नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 114 • वर्ष 9 अंक 11
दिसम्बर 2007 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

युद्धदेव के बन्दीग्राम में देखो नकली वामपन्थ का असली खूँखार चेहरा

सम्पादक

बीते 7 नवम्बर को पूरी दुनिया का मज़दूर वर्ग सोवियत समाजवादी क्रान्ति की 90वीं वर्षगाँठ मना रहा था। भारत का मज़दूर वर्ग भी उस ऐतिहासिक दिन को याद कर रहा था जब दुनिया के एक दहाई भूभाग को पूँजीपति वर्ग के शोषण-उत्पीड़न के शिकंजे से आजाद करा लिया गया था। लेकिन ठीक इसी दिन रात के अँधेरे में भारत के पश्चिम बंगाल राज्य के पूर्वी मिदनापुर जिले के नन्दीग्राम प्रखण्ड में इस महान क्रान्ति के नेता लेनिन का नाम लेने वाली और लाल झण्डा उड़ाने वाली एक पार्टी के काडर निहत्थे-निर्दोष गरीब मेहनतकश लोगों पर गोलियों-बमों की वर्षा कर रहे थे और स्त्रियों के साथ बलात्कार कर रहे थे। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (माकपा) के ये काडर "अपनी जनता" को उसके अपराधों के लिए सामूहिक दण्ड दे रहे थे।

नन्दीग्राम के इन गरीब मेहनतकश लोगों का अपराध यह था कि वे एक हत्यारे विदेशी पूँजीपति को औने-पौने दामों पर अपनी जमीनें देने को राजी नहीं थे। उनका अपराध यह था कि उन्होंने औद्योगीकरण की 'सेज' पर अपनी आजीविका की बलि चढ़ाने से इनकार कर दिया था। उनका अपराध केवल यह था कि उन्होंने विकास के नाम पर लुटेरे पूँजीपतियों की बेशर्म हिमायत करने वाली पार्टी के नकली लाल झण्डे को धूल में फेंककर राज्य की अन्धेरगर्दी के खिलाफ़ खुद संगठित होकर संघर्ष की राह पकड़ ली थी।

7 नवम्बर को माकपा काडरों का जो खूनी अभियान शुरू हुआ वह 12 नवम्बर को तब जाकर पूरा हुआ जब उन्होंने नन्दीग्राम को बन्दीग्राम बना लिया और राज्य के संरक्षण में पूरे इलाके में उनका आतंककारी वर्चस्व फिर से कायम हो गया। 12 नवम्बर के बाद से नन्दीग्राम में शान्ति कायम करने के नाम पर केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल (सी आर पी एफ) की तैनाती की जा चुकी है। माकपाई काडरों के इस 'इलाका दखल' अभियान के दौरान कितने लोग मारे गये और कितनी स्त्रियों के साथ बलात्कार हुआ इसकी ठीक-ठीक संख्या बताना इसलिए मुमकिन नहीं क्योंकि इस खूनी अभियान के शुरू होने से पहले पूरे इलाके की नाकाबन्दी कर ली गयी थी। न तो मीडिया को और न ही स्वतंत्र बुद्धिजीवियों के किसी दल को इलाके के भीतर घुसने दिया जा रहा था। यहाँ तक कि इलाके

में घुसने की कोशिश कर रहीं सामाजिक कार्यकर्ता मेधा पाटकर के साथ माकपाई काडरों ने बदसलूकी तक की। सरकारी सूत्र मरने वालों की संख्या केवल चार बता रहे हैं जबकि जानकार गैरसरकारी सूत्रों के अनुसार मरने वालों की संख्या 40 से ऊपर हो सकती है। अभी तक प. बंगाल सरकार और माकपा के शीर्ष नेता बलात्कार की खबरों को झूठा बता रहे हैं जबकि एक न्यूज चैनल ने बलात्कार की शिकार एक स्त्री के इण्टरव्यू तक दिखाये जिसमें उसने बलात्कार करने वाले दो माकपाई काडरों के नाम भी बताए। उसने यह बताया कि उसके साथ ही उसकी आँखों के सामने उसकी दो नाबालिग बेटियों के साथ भी माकपाई काडरों ने बलात्कार किये।

बुद्धदेव के मुँह से नरेन्द्र मोदी की आवाज़

माकपाई काडरों की इस बर्बरता पर राज्य के मुख्यमंत्री सहित समूचे पार्टी नेतृत्व को जरा सा भी अफसोस नहीं है। कवि हृदय और बांग्ला भद्रलोक का नुमाइन्दा माना जाने वाला राज्य का मुख्यमंत्री फासिस्टों की बेहयाई के साथ इस समूची बर्बरता की हिमायत करते हुए कहता है कि ईंट का जवाब पत्थर से दे दिया गया है। बेशर्मी की सारी हदों को पार करते हुए वह कहता है, "ग्यारह महीनों से अपने घर-आँगन से दूर रह रहे हमारे समर्थक लौटने को बेताब थे। वे अपनी जान पर खेलकर घर वापस आ गये। हताशा में उन्हें जवाब देना पड़ा। उनका ऐसा करना नैतिक और कानूनी दोनों ही तरीकों से उचित था।"

क्या फर्क है बुद्धदेव भट्टाचार्य और नरेन्द्र मोदी की भाषा और सोच में? गुजरात में हुए नरसंहार को जायज ठहराते हुए नरेन्द्र मोदी ने 'क्रिया-प्रतिक्रिया' का सिद्धान्त पेश किया था। क्या बुद्धदेव भट्टाचार्य के मुँह से नरेन्द्र मोदी की आवाज़ नहीं सुनायी दे रही है। गुजरात में मुसलमानों के कत्लेआम को जायज ठहराने के लिए नरेन्द्र मोदी और समूचा भगवा ब्रिगेड गोधरा की घटना को टेक की तरह बार-बार दुहराता है। अब उसी तर्ज पर

(पेज 6 पर जारी)

गुजरात विधानसभा चुनाव

लोकतंत्र की बिसात पर खूनी साम्प्रदायिक खेल

विशेष संवाददाता

दिल्ली। गुजरात में विधानसभा चुनाव की बिसात पर खुल्लम-खुल्ला साम्प्रदायिक राजनीति का खूनी खेल खेला जा रहा है। चुनाव प्रचार के पहले दौर में तथाकथित विकास का मुद्दा फुसफुसा जाने के बाद गुजरात के हिटलर नरेन्द्र मोदी ने सीधे-सीधे साम्प्रदायिक उन्माद की भाषा बोलना शुरू कर दिया है। उधर कांग्रेस भी हिन्दू साम्प्रदायिकता का विरोध करने के नाम पर मुस्लिम वोटरों को पटाने की नीयत से उनकी आहत भावनाओं को सहलाने-कुरेदने के सस्ते हथकण्डों पर उतर आयी है।

सूरत की एक चुनावी सभा को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्र मोदी ने फर्जी मुठभेड़ में सोहराबुद्दीन की हत्या को जायज ठहराया। सभा में मोदी ने जनता से पूछा कि उस व्यक्ति के साथ क्या व्यवहार किया जाये जिससे बड़ी भारी तादाद में ए.के. 47 राइफलें मिलीं, जिसे चार राज्यों की पुलिस तलाश कर रही थी, जिसने पुलिस पर हमला किया, जिसके पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध थे और जो गुजरात में प्रवेश करने की ताक में था। इसके बाद भीड़ ने कहा कि उसे मार दो। इस पर मोदी ने सवाल किया—क्या इसके लिए मेरी सरकार को सोनिया वेन से अनुमति लेने की जरूरत है। आगे उन्होंने कहा कि अगर मैंने कोई अपराध किया है तो सोनिया बेन की सरकार मुझे फाँसी दे सकती हैं।

इस तरह नरेन्द्र मोदी ने ताल ठोंककर केन्द्र सरकार, संविधान और न्यायपालिका को चुनौती देते हुए कहा कि दम है तो फाँसी दे दो। वह भी तब जबकि सोहराबुद्दीन के मामले की सच्चाई जगजाहिर हो चुकी है कि वह कोई आतंकवादी नहीं था और पत्नी व उसके एक साथी समेत उसकी फर्जी मुठभेड़ में हत्या करने के आरोपी तीन पुलिस अधिकारी जेल में बन्द हैं और सुप्रीम कोर्ट में यह मामला विचाराधीन है। इतना ही नहीं, स्वयं गुजरात सरकार इसे फर्जी मुठभेड़ मानते हुए आरोपियों को सजा दिलवाने के लिए सुप्रीम कोर्ट में पैरवी कर रही है। अब इन सबको झुठलाते हुए इन हत्याओं को भरी सभा में नरेन्द्र मोदी ने जायज ठहराया।

मोदी के इस बयान की कांग्रेस, केन्द्र सरकार की सहयोगी वामपन्थी पार्टियों और अन्य विपक्षी पार्टियों ने निन्दा करने की रस्म अदायगी कर दी है। चुनाव आयोग ने भी 'आदर्श आचार संहिता' के उल्लंघन के मामले पर विचार करने के लिए मोदी से जवाब तलब कर रस्म अदायगी कर दी है। लेकिन उग्र 'हिन्दुत्व' के चुनावी रथ पर सवार समूचा भगवा ब्रिगेड अश्वस्त है कि इन तमाम कवायदों से उसका हिन्दू वोट बैंक और अधिक सुरक्षित होता जा रहा है। और गुजरात में मोदी की फिर से वापसी होगी।

चुनाव आयोग की नोटिस पर मोदी ने अपनी सफाई देते हुए सफेद झूठ बोल दिया है कि उसने सभा में ऐसा कुछ नहीं कहा। उधर भाजपा के वरिष्ठ नेता मोदी का बचाव करते हुए बयान दे रहे हैं कि मोदी ने सभा में जो भी कहा वह सोनिया गाँधी के उकसाने पर किया। सोनिया गाँधी ने एक चुनावी सभा में गुजरात सरकार को बेईमान और मौत का सौदागर कहा था। भाजपा

(पेज 8 पर जारी)

आपस की बात

इस रोशनी के पीछे छिपी साजिशों को पहचानना होगा

9 नवम्बर के दिन लोगों को दीपावली का जश्न मनाते देखते हुए दिमाग में एक सवाल बार-बार उठ रहा था। सदियों से चली आ रही परम्परा को सारा समाज लक्ष्मी पूजा के नाम से मनाता है। अमीर-गरीब अपनी हैसियत के हिसाब से दीपावली पर लक्ष्मी पूजा के नाम से खर्च करता है ताकि आने वाले दिनों में धन वैभव से मैं खुशहाल रहूँगा। मैं पूँजीपति वर्ग की बात तो नहीं करूँगा क्योंकि पूँजीपति वर्ग तो दूसरों का खून चूस-चूसकर ही तो मोटा और ताकतवर होता जा रहा है। लेकिन दीपावली की जगमगाती रोशनी और पटाखों के शोर के बीच दब जाती है उन उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों की जिन्दगी जिनकी साल भर की मेहनत के बाद इतना भी पैसा नहीं दिया जाता कि उनकी जिन्दगी की बुनियादी जरूरतें भी पूरी हो सकें। दीपावली के नाम से फैक्टरी मालिकों के तरफ से सौ-दो सौ का सामान, साथ में मिठाई का डिब्बा दे दिया जाता है और मज़दूर लोग खुश हो जाते हैं और पूँजीपतियों को देखते हुए यह वर्ग भी लक्ष्मी पूजा के नाम से पैसे खर्च करता है। इसका एक असर तो साफ होता है। दीपावली के दिन सामान खरीदने वालों की भरमार रहती है। और दुकानदारों की चाँदी ही चाँदी होती है। सामान की कीमतें आसमान छूतीं हैं। मेहनत करने वाले लोग जो पैसे वह साल भर हाड़-तोड़ मेहनत की प्रक्रिया चालू हो जाती है। लक्ष्मी तो नहीं आई सदियों से हम मेहनत करने वालों के घरों में, लेकिन भूख और कंगाली जरूर हमारे दरवाजों पर दस्तक दे रही है। अगर हमें खुशहाली बेहतर जिन्दगी चाहिए तो इस रोशनी के पीछे छिपी साजिशों को जानना होगा। अपने पूर्वजों की बातों को आँख बन्द कर मान लेने से समस्या हल नहीं वाली है। जैसा कि भगतसिंह ने कहा था मैं अपने पूर्वजों का आदर करता हूँ लेकिन उनकी बातों को अपने तर्कों पर तोलूँगा। फिर जो तर्कसंगत होगा उसे मानूँगा।

अगर हमें बेहतर जिन्दगी, खुलहाल जिन्दगी चाहिए तो लक्ष्मी पूजा करने से नहीं मिलेगी। बल्कि मुनाफे पे टिकी इस वर्तमान व्यवस्था को सर्वनाश करके नई समाजवादी व्यवस्था का निर्माण करना होगा।

दर्शन कुमार,
लुधियाना से एक मज़दूर

दे दो आज़ादी हमें ये बग़ावत का इशारा है

उठा फिजाओं में जो शोर इन गरीबों का नारा है,
दे दो आजादी हमें ये बगावत का इशारा है।
जितना लूटना था लूट चुका इस देश को बचा लेंगे
देश की गरिमा ये धरती माँ की कसम खाये हैं।
फाँसी का फन्दा क्या लगाओगे।
हम पहिनेंगे गले का हार बनाकर
आजादी लेके रहेंगे दुष्टों
चैन लेंगे तुझे मिट्टी में मिलाकर।
आखिर कब तक बैठेंगे वीरों, अपनी मुँह मोड़कर।
उठा लो हथियार अपनी सारे रिश्ते तोड़कर
भूखे प्यासे मर जाओगे।
थोड़ी सी आबादी होगी।
तुम्हीं खो जाओगे वीरों देश कि बर्बादी होगी
इन भ्रष्ट नेताओं को रंग दो अपने खून के रंग में।
सब सुख मिलेगा ओ हमारी आजादी होगी।
धिक्कार है वीरों, तुम्हारी इस जवानी पर।
क्या खोया क्या पाया ये तुम्हें बताना होगा।
मूर्ख थे ओ वीर भगतसिंह, चन्द्रशेखर,
मिट गए इस स्वतंत्रता के खातिर ये तुझे समझाना होगा।

सिधेश्वर तिवारी, लुधियाना

दुश्मन की पहचान

वे भी थे मज़दूर
हमारे-तुम्हारे जैसे
खूब मेहनत से वे खटते थे
दिन-रात वे काम करते थे
खेतों, खदानों में,
फैक्ट्रियों में, कारखानों में,

पशुओं सा था उनका जीवन।
आखिर वे समझ गए इसका कारण,
क्यों वे रहते हैं बदहाल हमेशा?
क्यों वे रहते हैं मोहताज?
कौन लूटता है उनकी मेहनत को?
और कौन उठाता है ऐशो-आराम?
क्यों नहीं उनका पेट भर-पाता?
कौन उनकी रोटियाँ छीन ले जाता ?

वे ही क्यों अक्सर मरते हैं,
भूख-आपदा-बीमारी से
क्यों उन्हीं लोगों पर चलती हैं
सत्ता की गोलियाँ?
क्योंकि उनकी बहू-बेटियों की
बाजारों में लगती है बोलियाँ?
क्यों उनके बच्चे का बचपन
खो जाता है अँधियारे में?
कौन लड़ाता है देशों को और
खुद घूमता मोटर-कारों में?

वह पहचान गया दुश्मन को
नहीं है वो कोई दैवी शक्ति,
नहीं हैं पिछले जन्मों का पाप,
वो तो है ये पूँजीपति हरामखोर
जिसका हरदम साथ देती है सरकार।

तब फिर बज उठी रणभेरी
हुजूम निकला पड़ा सड़कों पर
हर मेहनतकश ने आवाज़ उठाई थी
"हम बदलेंगे अपना जीवन
खत्म करेंगे दुनिया से शोषण
पूँजी का राज मिटायेंगे
नया समाज बनायेंगे।"

शिकागो की गलियों में
पेरिस की सड़कों पर
आज़ादी की लहर उठी
इंक़लाब का सैलाब आया
हिल गये पूँजीपति सारे
सरकारें भी हैरान हुईं।

फिर दमन का दौर चला
क्या गलियों में, क्या सड़कों पर
आख़िर तक लड़ते रहे
जो थे मज़दूर, हमारे-तुम्हारे जैसे
डूब गया रक्त के महासागर में
आजादी, न्याय और सत्य का वह ज्वार।

पर न टूटा वह सपना
जो था हमारा अपना
बनकर बादल रूस में वह बरसा
चीन में खिला जैसे फूल-बहार
मज़दूरों ने दिखला दिया
श्रम से बड़ी नहीं कोई ताकत
श्रम ही बदल सकता है संसार।

हमें भी लड़ना होगा
एक युद्ध,
न पहली बार
न अन्तिम बार।

लेकिन पहले करनी होगी
अपने 'दुश्मन की पहचान'
तभी मिट सकता है दुनिया में
अन्याय और शोषण का राज।

गौरव, नोएडा

अमीर भर पेट और गरीब आधा पेट क्यों खाते हैं!

मैंने बिगुल पढ़ा। अच्छा लगा। हमारी तनख्वाह नहीं बढ़ रही है। हमारे कमरे का किराया बढ़ जाता है। हमारे अड़ोस-पड़ोस का माहौल ठीक नहीं है। हम ये जानना चाहते हैं कि जो अमीर है वह पूरा पेट क्यों खाते हैं हम गरीब है क्यों आधा पेट खाते हैं। हम ये जानता चाहते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा है हम इस परेशानी में चार बच्चे लेकर कहाँ जाए। महँगाई इतनी क्यों बढ़ रही है। हम ये जानना चाहते हैं कि हम जिस डाक्टर के पास जाते हैं वह हमारा सही ढंग से इलाज क्यों नहीं करता है। हम मज़दूर हैं हमारा खर्चा क्यों नहीं निकलता है।

—सुमन विश्वकर्मा
लुधियाना से एक मज़दूर स्त्री

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतक़श आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल को सहयोग राशि भेजने वाले साथी ध्यान रखें

- **मनीआर्डर भेज रहे हैं तो उसके साथ अपना नाम, पता उस हिस्से में भी लिखें जो सन्देश के लिये निर्धारित होता है। एक पोस्टकार्ड पर भी अपना पता लिखकर भेज दें। कई बार सैटेलाइट मनीआर्डर में सन्देश वाला हिस्सा खाली होता है।**
- **कृपया सहयोग राशि भेजकर अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें और बिगुल को जारी रखने में मदद करें।**

– सम्पादक

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण हॉम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : मिथिलेश, 247, बैकडोर इण्ट्री, परमानन्द कालोनी, दिल्ली-110054
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति—रु. 3.00 वार्षिक—रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :
1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, वाघम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतक़श साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढाँचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीबनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएँ 10/-
समाजवाद की समस्याएँ, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
पार्टी कार्य के बारे में 15/-
जनता के बीच पार्टी का काम 30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

पश्चिम बंगाल में जारी है राशन आन्दोलन

'परमाणु करार पर भाषण नहीं राशन चाहिए' आक्रोशित जनता ने आवाज़ उठायी

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। मार्क्सवाद की जुगाली करने वाली भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) माकपा के काडर केवल सिंगूर और नन्दीग्राम में ही राज्य के तथाकथित औद्योगिक विकास के विरोधियों को सबक नहीं सिखा रहे हैं, बल्कि पूरे राज्य में उनका आतंकराज कायम है। राज्य के कई जिलों में राशन की माँग के लिए आवाज़ उठाने वाले गरीबों पर न केवल पुलिस लाठियाँ-गोलियाँ चला रही है, वरन माकपा के गुण्डे भ्रष्ट राशन डीलरों के पक्ष में तलवार, भाले, बन्दूकें लेकर जुलूस निकाल रहे हैं और जनता पर हमले कर रहे हैं।

दरअसल, पश्चिम बंगाल के दक्षिणी जिलों से लेकर उत्तर तक बांकुड़ा, बीरभूम, नादिया, मुर्शिदाबाद, बर्द्धमान, चौबीस परगना और मालदा से लेकर सिलीगुड़ी तक गरीब जनता राशन की माँग को लेकर सड़कों पर उतरी हुई है। सितम्बर के मध्य में दक्षिणी जिलों से शुरू हुआ यह आन्दोलन अब लगभग समूचे राज्य में फैल चुका है। जनाक्रोश का ऐसा उबाल पिछले चालीस सालों में बंगाल में नहीं देखा गया। लोगों ने पहले सम्बन्धित अधिकारियों से शिकायतें कीं कि राशन की दुकानों से महीनों से कार्डधारकों को गेहूँ, चावल नहीं मिल रहा है। जब अधिकारियों, पंचायत सदस्यों, विधायकों, सांसदों किसी ने उनकी बात नहीं सुनी तो लोगों ने भ्रष्ट राशन डीलरों और वितरकों पर हमले बोलना शुरू कर दिया। अब तक जनसमूहों ने दर्जनों राशन की दुकानों में लूटपाट, आगजनी और तोड़फोड़ कर अपने आक्रोश का प्रदर्शन किया है।

राज्य की गरीब मेहनतकश जनता के इस राशन आन्दोलन को एक जनान्दोलन मानकर उनकी वाजिब शिकायतों को दूर करने के बजाय राज्य सरकार इस जनकार्रवाई को अपराधियों की करतूत बताते हुए राशन डीलरों और वितरकों को पुलिस सुरक्षा प्रदान कर रही है और लोगों पर लाठियाँ-गोलियाँ चला रही है। आक्रोशित लोगों पर पुलिस ने लगभग आधा दर्जन स्थानों पर गोलियाँ चलायी हैं जिसमें कम से कम एक व्यक्ति की मौत हो गयी और आधा दर्जन लोग जख्मी हुए हैं। राशन डीलरों पर सरकार की इस मेहरबानी का कारण यह है कि ज्यादातर राशन डीलर माकपा सदस्य हैं और खुले बाजार में राशन की कालाबाजारी कर मालामाल हो रहे हैं। कल तक झोपड़ियों में रहने वाले राशन डीलर रातों-रात लखपति करोड़पति बन गये हैं। कितने बड़े पैमाने पर यह लूट हो रही है इसे बताने के लिए एक तथ्य काफी है। बर्द्धमान जिले के नवाबहाट में एक राशन डीलर के घर पर धावे में लूटे और तहस-नहस किये गये मालों की सूची में आठ लाख रुपये के गहने, 14 लाख रुपये नकद, बारह लाख रुपये के फर्नीचर, दो रेफ्रिजरेटर, दस टेलीविजन सेट, छह मोटरसाइकिलें, एक टाटा सूमो और एक ट्रैक्टर शामिल है।

यह राशन आन्दोलन उस राज्य में फैला है जहाँ तीस साल से मुसल्सल तथाकथित वामपन्थी सरकार कायम है और यह खुद को गरीबों की सरकार होने का दावा करती नहीं अघाती। इतना ही नहीं वह सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरुस्त करने के बारे में सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचाती नजर आती है। लेकिन माकपा के सज्य सचिव विमान बोस इसे गरीब जनता का आन्दोलन मानने के बजाय 'राशन प्रणाली को बर्बाद करने की मंशा रखने वालों की करतूत' बताते हैं तो केन्द्रीय नेतृत्व भारत-अमेरिका परमाणु करार पर पाखण्ड करने में मशगूल है।

दरअसल, इस राशन आन्दोलन की शुरुआत ही इस माकपाई पाखण्ड के ख़िलाफ़ जनता के गुस्से के इजहार के रूप में हुई। विगत 16 सितम्बर को बांकुड़ा में माकपा ने साम्राज्यवाद विरोधी सभा बुलाई थी। नेताओं ने जब मंच से भारत-अमेरिका परमाणु करार के खतरों के बारे में बोलना शुरू किया तो लोग मंच पर टूट पड़े। एक व्यक्ति ने माइक छीनकर चिल्लाकर कहा : "अब हम तुम्हें सबक सिखायेंगे। तुम हमें चावल और गेहूँ तो दे नहीं सकते। इसके बदले तुम हमें ऐसी बातें सुना रहे हो जो हमारी समझ से परे है। हमें परमाणु करार की बातें समझ में नहीं आती; हमें राशन दो।" इस घटना के बाद ही पूरे राज्य में राशन आन्दोलन भड़क उठा।

देश भर में हो रही राशन की लूट

राशन की दुकानों से डीलरों-वितरकों द्वारा राशन की लूट देशव्यापी है। इस लूट के माल में नौकरशाह और नेता भी अपना हिस्सा लेते हैं। कहीं ज्यादा कहीं कम। केन्द्र सरकार द्वारा किये गये एक अध्ययन के आँकड़े यही बताते हैं कि महज चावल और गेहूँ की ऐसी लूट वर्ष 2004-05 में 9918.17 करोड़ रुपये, 2005-06 में 10,330.28 करोड़ रुपये और 2006-07 में 11,336.98 करोड़ रुपये थी। यानी हर साल लूट बढ़ती जा रही है। इन तीन सालों में ही डीलरों, नौकरशाहों और नेताओं ने कुल 31,500 करोड़ रुपये लूट लिये। यह लूट कितनी बड़ी है इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि यह स्वास्थ्य पर दो साल के सरकारी खर्च के बराबर है और शिक्षा पर एक साल के खर्च के बराबर। इसी सरकारी अध्ययन में यह कहा गया है कि हर साल सरकारी राशन प्रणाली से 58.3 फीसदी गेहूँ और 39 फीसदी चावल काला बाजार में चला जाता है।

देश की आला अदालत भी इस लूट की ओर इशारा करती है। भोजन के बुनियादी अधिकार पर सुप्रीम कोर्ट ने एक पूर्व न्यायाधीश डी.पी. वाधवा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की थी। इसने 31 अगस्त, 2007 को पेश अपनी रपट में बताया कि सरकारी राशन प्रणाली का पूरा ढाँचा "अक्षम और भ्रष्ट है। बड़े पैमाने पर अनाज की कालाबाजारी हो रही है। गरीब लोगों को कभी पर्याप्त और स्तरीय अनाज नहीं मिल पाता।" समिति ने राजधानी दिल्ली की 32 राशन दुकानों और छह में से तीन गोदामों का मुआयना किया और सबमें 'बड़े पैमाने पर धाँधलियाँ पाईं। भ्रष्ट डीलरों, व्यापारियों, ट्रांसपोर्टरों का गंठजोड़ काम कर रहा है जिसे राजनीतिक वरदहस्त हासिल है।' न्यायाधीश वाधवा ने कहा कि 'कोई भी दुकान ऐसी नहीं पायी गयी जहाँ गड़बड़ी नहीं मिली। जब देश की राजधानी के ये हाल हैं तो गाँव-देहात में क्या हालत होगी।'

गाँव-देहात के हाल जानने के लिए किसी जाँच-समिति की कोई आवश्यकता नहीं। यह किसी एक गाँव या मुहल्ले के कार्डधारकों से मिलकर जाना जा सकता है। इस तरह की जाँच समितियाँ केवल सरकारों और व्यवस्था में लोगों का भरोसा बनाये रखने के लिए बनायी जाती हैं। इनकी रिपोर्टों का अमली नतीजा कुछ नहीं होता। उ. प्र. की मुख्यमंत्री मायावती ने भी अपनी पाक-साफ छवि बनाये रखने के लिए प्रदेश के राशन घोटाले की जाँच सी. बी.आई. को सौंप दी है। इसकी रिपोर्ट भी आ जायेगी। पर सवाल है कि इससे होगा क्या?

इफ्को खाद कारखाना फूलपुर की कहानी

ठेकेदारों के वर्चस्व की लड़ाई में खामियाज़ा भुगता मज़दूरों ने

बिगुल संवाददाता

इलाहाबाद। फूलपुर स्थित खाद कारखाने में ठेकेदारों के वर्चस्व की लड़ाई में दो ठेकेदारों की जान चली गयी और उसका खामियाजा भुगतना पड़ा मज़दूरों को। मज़दूरों को न केवल काम से हाथ धोना पड़ा बल्कि प्रबन्धन ने पुलिस के हाथों उनकी बर्बर पिटाई भी कराई और हत्या के आरोप में भी उन्हें फँसा दिया गया।

घटना बीते 28 नवम्बर की है। सहकारी क्षेत्र के अमोनिया आधारित इस अत्याधुनिक कारखाने में तैयार खाद को बोरे में भरने का काम हाथ से होता है जिसे ठेका मज़दूरों से करवाया जाता है। कारखाने के बैगिंग प्लाण्ट में होने वाले इस काम के लिए हर साल निविदा के जरिये ठेका तय किया जाता है। इस साल यह ठेका एल.के.एल. नामक कम्पनी को मिला था जिसके मुख्य कर्ता-धर्ता लालता प्रसाद मिश्र नामक एक ठेकेदार हैं। पिछले साल भी इसी कम्पनी को ठेला मिला था। इससे ठेके की चाहत रखने वाले कुछ अन्य ठेकेदार नाराज थे।

उधर इस साल ठेका मिलने के बाद ठेकेदार ने पुराने मज़दूरों को काम से निकालना शुरू कर दिया था। इससे मज़दूरों में भी आक्रोश था। इसे देखते हुए कारखाना प्रबन्धन ने स्थानीय एस. डी.एम. की मध्यस्थता में पिछले 16 नवम्बर को मज़दूरों के साथ एक समझौता कराया था। इसके मुताबिक दोनों पक्षों में यह सहमति बनी थी कि केवल 60 वर्ष से अधिक उम्र के मज़दूरों को काम से हटाया जा सकता है। लेकिन ठेका कम्पनी ने इस समझौते का पालन नहीं किया।

बैगिंग प्लाण्ट में ठेका कम्पनी के तहत कुल 400 से अधिक मज़दूर काम करते थे। पिछले 28 नवम्बर को ठेकेदार ने 80 मज़दूरों को काम से निकालने की नीयत से कारखाने के भीतर घुसने नहीं दिया। इससे आक्रोशित मज़दूर कारखाना गेट पर ही धरने पर बैठ गये और भीतर भेजे गये मज़दूरों ने काम ठप कर दिया। कारखाने में भीषण तनाव की स्थिति पैदा हो गयी। भीतर ठेकेदार और मज़दूरों के बीच नोंकझोंक चलती रही और बाहर मज़दूर नारे लगाते रहे। लंच के समय कारखाने से बाहर निकलने वाले स्थायी कर्मचारियों और धरने पर बैठे ठेका मज़दूरों के बीच भी विवाद हुआ। इसी दौरान यह अफवाह उड़ी कि भीतर ठेकेदार ने दो मज़दूरों को जान से मार दिया है। यह सुनकर बाहर धरने पर बैठे मज़दूर अत्यधिक आक्रोश में आ गये और सिक्योरिटी गार्डों से भिड़ते हुए कारखाने के भीतर दाखिल हो गये।

कारखाने के भीतर बैगिंग प्लाण्ट

में ठेकेदारों और मज़दूरों के बीच उग्र वाद-विवाद चल रहा था। ठेकेदारों की गुण्डागर्दी से आक्रोशित मज़दूर उनसे गुत्थम-गुत्था हो गये। इसी बीच रहस्यमय ढंग से दोनों ठेकेदारों को ऊपरी मंजिल पर स्थित बैगिंग प्लाण्ट से नीचे फेंक दिया गया। प्रबन्धन का कहना है कि मज़दूरों ने ही मारकर नीचे फेंक दिया जबकि मज़दूरों का कहना है कि यह प्रबन्धन और प्रतिद्वन्द्वी ठेकेदारों की साजिश है। कारखानों में काम करने वाले कुछ स्थायी कर्मचारियों ने भी इस संवाददाता को नाम न छापने की शर्त पर बताया कि प्रतिद्वन्द्वी ठेकेदारों और प्रबन्धन की साजिश के तहत ठेकेदारों को मारकर नीचे फेंका गया है। उनका कहना था कि भीतर ठेकेदारों द्वारा दो मज़दूरों को मार डालने की अफवाह उड़ाना भी साजिश का हिस्सा था जिससे मज़दूर आक्रोशित हो जायें और प्रतिद्वन्द्वी ठेकेदारों का काम आसान हो जाये।

मज़दूरों में आक्रोश इतना जबर्दस्त था कि उन्हें शान्त करने पहुँचे सी.ओ. और इंस्पेक्टर को भी भाग खड़े होना पड़ा था। लेकिन बाद में मज़दूरों को बातचीत के बहाने प्रबन्धन ने बुलाया और भारी संख्या में पुलिस बल को बुलाकर बर्बरतापूर्वक लाठी चार्ज करवा दिया जिसमें दर्जनों मज़दूरों को गम्भीर चोटें आयीं। इसके अलावा दर्जनों मज़दूरों पर हत्या, हत्या के प्रयास और तोड़फोड़ के मुकदमे भी ठोंक दिये गये।

घटना के बाद से कारखाना प्रबन्धन बाहर से ठेकेदारों को बुलाकर खाद भराई का काम करवा रहा है। कारखाने के स्थायी कर्मचारियों में भी प्रबन्धन और ठेकेदार के रवैये को लेकर अन्दर ही आक्रोश है लेकिन कोई खुलकर बोलने के लिए तैयार नहीं है। इस रहस्यमय घटना ने कर्मचारियों को 1980 के दशक में इस खाद कारखाने के एक लोकप्रिय मज़दूर नेता राजेन्द्र सिंह की रहस्यमय हत्या की यादें भी ताज़ा कर दी हैं। फिलहाल कारखाने की यूनियनों के असरहीन होने के कारण प्रबन्धन और ठेकेदारों ने कर्मचारियों-मज़दूरों के ऊपर अपना निरंकुश राज कायम कर लिया है।

इफ्को फूलपुर की इस घटना की रिपोर्टिंग कुछेक स्थानीय समाचारपत्रों में हुई लेकिन आधे-अधूरे ढंग से। उसमें मुख्यतः प्रबन्धन के पक्ष की ही बात उभरकर सामने आयी। एक राष्ट्रीय न्यूज चैनल ने इस घटना पर एक रिपोर्ट थोड़ी देर दिखायी लेकिन फिर उसका प्रसारण बन्द हो गया। इतनी बड़ी घटना को बुर्जुआ मीडिया ने लगभग 'ब्लैक आउट' कर दिया। लोकसभा में स्थानीय नेता रेवतीरमण सिंह ने आवाज उठायी भी तो उनकी मुख्य चिन्ता कारखाने के कामकाज को सामान्य ढर्रे पर लाने के लिए ज्यादा थी। मज़दूरों को न्याय दिलाने की बात उठाने की उन्होंने जहमत नहीं उठायी।

भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में संशोधनवाद

इतिहास के कुछ जरूरी और दिलचस्प तथ्य

पुराने पाठकों ने बिगुल के पन्नों पर पहले भी इस लेख को देखा-पढ़ा होगा। इसके महत्व और इसकी प्रासंगिकता को देखते हुए बिगुल के पाठकों के लिए हम इस लेख की पुनर्प्रस्तुति कर रहे हैं।
सम्पादक

ऐसा नहीं है कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का चरित्र शुरू से ही संशोधनवादी रहा हो। पार्टी की गम्भीर विचारधारात्मक कमजोरियों, और उनके चलते बारम्बार होने वाली राजनीतिक गलतियों, और उनके चलते राष्ट्रीय आन्दोलन पर अपना राजनीतिक वर्चस्व न कायम कर पाने के बावजूद, कम्युनिस्ट कतारों ने साम्राज्यवाद-सामन्तवाद विरोधी संघर्ष के दौरान बेमिसाल और अकूत कुर्बानियाँ दीं। कम्युनिस्ट पार्टी पर मज़दूरों और किसानों का पूरा भरोसा था।

1951 में तेलंगाना किसान संघर्ष की पराजय के बाद का समय वह ऐतिहासिक मुकाम था, जब, कहा जा सकता है कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का वर्ग चरित्र गुणात्मक रूप से बदल गया और सर्वहारा वर्ग की पार्टी होने के बजाय वह बुर्जुआ व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति बन गयी। वह कम्युनिस्ट नामधारी बुर्जुआ सुधारवादी पार्टी बन गयी। लेकिन ऐसा रातों-रात और अनायास नहीं हुआ। पार्टी अपने जन्मकाल से ही विचारधारात्मक रूप से कमजोर थी और कभी दक्षिणपंथी तो कभी "वामपंथी" (ज्यादातर दक्षिणपंथी) भटकावों का शिकार होती रही।

1920 में ताशकन्द में एम.एन.राय व विदेश स्थित कुछ अन्य भारतीय कम्युनिस्टों की पहल पर भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। लेकिन देश के अलग-अलग हिस्सों में काम करने वाले कम्युनिस्ट ग्रुप मूलतः अलग-अलग और स्वायत्त ढंग से काम करते रहे। पुनः 1925 में सत्यभक्त की पहल पर कानपुर में अखिल भारतीय कम्युनिस्ट कांफ्रेंस में पार्टी की घोषणा हुई, लेकिन उसके बाद भी एक एकीकृत केन्द्रीय नेतृत्व के मातहत पार्टी का सुगठित क्रान्तिकारी ढाँचा नहीं बन सका। कानपुर कांफ्रेंस तो लेनिनवादी अर्थों में एक पार्टी कांग्रेस थी भी नहीं। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में, मज़दूरों और किसानों के प्रचण्ड आन्दोलनों, उनके बीच कम्युनिस्ट पार्टी की व्यापक स्वीकार्यता एवं आधार, भगतसिंह जैसे मेधावी युवा क्रान्तिकारियों के कम्युनिज्म की तरफ झुकाव और कांग्रेस की स्थिति (असहयोग आन्दोलन की वापसी के बाद का और स्वराज पार्टी का दौर) खराब होने के बावजूद कम्युनिस्ट पार्टी इस स्थिति का लाभ नहीं उठा सकी। यह अलग से विस्तृत चर्चा का विषय है। मूल बात यह है कि विचारधारात्मक रूप से कमजोर एक ढीली-ढाली पार्टी से यह अपेक्षा की ही नहीं जा सकती थी। 1933 में पहली बार, कम्युनिस्ट इण्टरनेशनल, ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के आग्रहपूर्ण सुझावों-अपीलों के बाद, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी का एक स्वीकृत सुगठित ढाँचा बनाने की कोशिशों की शुरुआत हुई और एक केन्द्रीय कमेटी का गठन हुआ। लेकिन वास्तव में उसके बाद भी पार्टी का ढाँचा ढीला-ढाला ही बना रहा। पी.सी. जोशी के सेक्रेटरी होने के दौरान पार्टी प्रायः दक्षिणपंथी भटकाव का शिकार रही तो रणदिवे के नेतृत्व की छोटी-सी अवधि अतिवामपंथी भटकाव से ग्रस्त रही। पार्टी की विचारधारात्मक कमजोरी का आलम यह था कि 1951 तक पार्टी के पास क्रान्ति का एक व्यवस्थित कार्यक्रम तक नहीं था। 1951 में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा इस विडम्बना की ओर इंगित करने और आवश्यक सुझाव देने के बाद, भारतीय पार्टी के प्रतिनिधिमण्डल ने एक नीति-निर्धारक वक्तव्य जारी किया और फिर उसी आधार पर एक कार्यक्रम तैयार कर लिया गया। यानी तीस वर्षों तक पार्टी अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा प्रस्तुत आम दिशा के आधार पर राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति की एक मोटी समझदारी के आधार पर ही काम करती रही। रूस और चीन की पार्टियों की तरह भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने अपने देश की ठोस परिस्थितियों का—उत्पादन-सम्बन्धों और अधिरचना का ठोस अध्ययन-मूल्यांकन करके क्रान्ति का कार्यक्रम तय करने की कभी कोशिश नहीं की। इसके पीछे पार्टी की विचारधारात्मक कमजोरी ही मूल कारण थी और कार्यक्रम की सुसंगत समझ के अभाव के चलते पैदा हुए गतिरोध ने, फिर अपनी पारी में, इस विचारधारात्मक कमजोरी को बढ़ाने का ही काम किया।

तेलंगाना किसान संघर्ष की पराजय के बाद पार्टी नेतृत्व ने पूरी तरह से बुर्जुआ वर्ग की सत्ता के प्रति आत्मसमर्पणवादी रुख अपनाया। 1952 के पहले आम चुनाव में भागीदारी तक पार्टी पूरी तरह से संशोधनवादी हो चुकी थी। संसदीय चुनावों में भागीदारी और अर्थवादी ढंग से मज़दूरों-किसानों की माँगों को लेकर आन्दोलन—यही दो उसके रुटीनी काम रह गये थे। पार्टी के रहे-सहे लेनिनवादी ढाँचे को भी विसर्जित कर दिया गया और इसे पूरी तरह से खुले ढाँचे वाली और ट्रेड यूनियनों जैसी चवन्निया मेम्बरी वाली पार्टी बना दिया गया। सोवियत संघ में ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के हावी होने और 1956 की बीसवीं कांग्रेस के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधनवाद को अन्तरराष्ट्रीय प्रमाण पत्र भी मिल गया। 1958 में अमृतसर की विशेष कांग्रेस में पार्टी संविधान की प्रस्तावना से, सर्वसम्मति से, क्रान्तिकारी हिंसा की अवधारणा को निकाल बाहर करने के बाद पार्टी का संशोधनवादी दीक्षा-संस्कार पूरा हो गया।

लेकिन अब पार्टी के संशोधनवादी ही दो धड़ों में बँट गए। डांगे-अधिकारी-राजेश्वर राव आदि के नेतृत्व वाले धड़े का कहना था कि कांग्रेस के भीतर और बाहर के रूढ़िवादी बुर्जुआ वर्ग का विरोध करते हुए नेहरू के नेतृत्व में प्रगतिशील राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधि जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा कर रहे हैं अतः कम्युनिस्ट पार्टी को उनका समर्थन करना चाहिए, और इस काम के पूरा होने के बाद उसका दायित्व होगा संसद के रास्ते सत्ता में आकर समाजवादी क्रान्ति को अंजाम देना। ये लोग राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति की बात कर रहे थे, जबकि लोक जनवादी क्रान्ति की बात करने वाला सुन्दरैया-गोपालन-नम्बूदरीपाद आदि के नेतृत्व वाला दूसरा धड़ा कह रहा था कि सत्तारूढ़ कांग्रेस साम्राज्यवाद से समझौते कर रही है और भूमि सुधार के वायदे से मुकर रही है, अतः जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को पूरा करने के लिए हमें बुर्जुआ वर्ग के रैडिकल हिस्सों को साथ लेकर संघर्ष करना होगा। दोनों ही धड़े जनवादी क्रान्ति की बात करते हुए, सत्तासीन बुर्जुआ वर्ग के चरित्र का अलग-अलग आकलन करते हुए अलग-अलग कार्यकारी नतीजे निकाल रहे थे लेकिन दोनों के वर्ग चरित्र में कोई फर्क नहीं था। दोनों ही धड़े संसदीय मार्ग को मुख्य मार्ग के रूप में चुन चुके थे। दोनों बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों व ढाँचे का परित्याग कर चुके थे और काउत्स्की, मार्तोव और ख्रुश्चेव की राह अपना चुके थे। फर्क सिर्फ यह था कि एक धड़ा सीधे उछलकर बुर्जुआ वर्ग की गोद में बैठ जाना चाहता था, जबकि दूसरा विपक्षी संसदीय पार्टी की भूमिका निभाना चाहता था ताकि रैडिकल विरोध का तेवर दिखलाकर जनता को ज्यादा दिनों तक ठगा जा सके। एक धड़ा अर्थवाद का पैरोकार था तो दूसरा उसके बरक्स ज्यादा जुझारू अर्थवाद की बानगी पेश कर रहा था। देश की परिस्थितियों के विश्लेषण और कार्यक्रम से सम्बन्धित मतभेदों-विवादों का तो वैसे भी कोई मतलब नहीं था, क्योंकि यदि क्रान्ति करनी ही नहीं थी तो कार्यक्रम को तो 'कोल्ड स्टोरेज' में ही रखे रहना था।

1964 में दोनों धड़े औपचारिक रूप से अलग हो गये। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) से अलग होने वाली भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेतृत्व ने भाकपा को संशोधनवादी बताया और कतारों की नजरों में खुद को क्रान्तिकारी सिद्ध करने के लिए खूब गरमागरम बातें की। लेकिन असलियत यह थी कि माकपा भी एक संशोधनवादी पार्टी ही थी और ज्यादा धूर्त और कुटिल संशोधनवादी पार्टी थी।

इस नयी संशोधनवादी पार्टी की असलियत को उजागर करने के लिए केवल कुछ तथ्य ही काफी होंगे। 1964 में गठित इस नयी पार्टी ने अमृतसर कांग्रेस द्वारा पार्टी संविधान में किये गये परिवर्तन को दुरुस्त करने की कोई कोशिश नहीं की। शान्तिपूर्ण संक्रमण की जगह क्रान्ति के मार्ग की खुली घोषणा और संसदीय चुनावों में भागीदारी को मात्र रणकौशल बताने की जगह इसने "संसदीय और संसदेतर मार्ग" जैसी गोल-मोल भाषा का अपने कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जिसकी आवश्यकतानुसार मनमानी व्याख्या की जा सकती थी। आर्थिक और राजनीतिक संघर्ष के अन्तरसम्बन्धों के बारे में इसकी सोच मूलतः लेनिनवादी न होकर संघाधिपत्यवादियों एवं अर्थवादियों जैसी ही थी। फर्क यह था कि इसके अर्थवाद का तेवर भाकपा के अर्थवाद के मुकाबले अधिक जुझारू था। इसके असली चरित्र का सबसे स्पष्ट संकेतक यह था कि भाकपा की ही तरह यह भी पूरी तरह से खुली पार्टी थी और सदस्यता के मानक भाकपा से कुछ अधिक सख्त लगने के बावजूद (अब तो वह भी नहीं है) यह भी चवन्निया मेम्बरी वाली 'मास पार्टी' ही थी।

ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का संघर्ष 1957 से ही जारी था, जो 1963 में 'महान बहस' नाम से प्रसिद्ध खुली बहस के रूप में फूट पड़ा और अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन औपचारिक रूप से विभाजित हो गया। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के नेतृत्व ने पहले तो इस बहस की कतारों को जानकारी ही नहीं दी। इस मायने में भाकपा नेतृत्व की पोजीशन साफ थी। वह डंके की चोट पर ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के साथ खड़ा था। महान बहस की जानकारी और दस्तावेज जब कतारों तक पहुँचने लगे तो माकपा-नेतृत्व पोजीशन लेने को बाध्य हुआ। पोजीशन भी उसने अजीबोगरीब ली। उसका कहना था कि सोवियत पार्टी का चरित्र संशोधनवादी है लेकिन राज्य और समाज का चरित्र समाजवादी है। साथ ही उसका यह भी कहना था कि ख्रुश्चेवी संशोधनवाद का विरोध करने वाली चीनी पार्टी "वाम" संकीर्णतावाद व दुस्साहसवाद की शिकार है। अब यदि मान लें कि साठ के दशक में सोवियत समाज अभी समाजवादी बना हुआ था, तो भी, यदि सत्ता संशोधनवादी पार्टी (यानी सारतः पूँजीवादी पार्टी) के हाथ में थी तो राज्य और समाज का समाजवादी चरित्र कुछेक वर्षों से अधिक बना ही नहीं रह सकता था। लेकिन माकपा अगले बीस-पच्चीस वर्षों तक (यानी सोवियत संघ के विघटन के समय तक) न केवल सोवियत संघ को समाजवादी देश मानती रही, बल्कि दूसरी ओर, धीरे-धीरे सोवियत पार्टी को संशोधनवादी कहना भी बन्द कर दिया। इसके विपरीत, माओ और चीन की पार्टी के प्रति उसका रुख प्रायः चुप्पी का रहा। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की उसने या तो दबी जुबान से आलोचना की, या फिर उसके प्रति चुप्पी का रुख अपनाया। चीन में माओ की मृत्यु के बाद तो मानो इस पार्टी की बाँछें खिल उठीं। वहाँ पूँजीवादी पुनर्स्थापना के बाद देङ सियाओ-पिङ और उसके चेले-चाटियों ने समाजवादी संक्रमण विषयक माओ की नीतियों को पूरी तरह से तिलांजलि दे दी और "चार आधुनिकीकरणों" तथा उत्पादक शक्तियों के विकास के सिद्धान्त के नाम पर वर्ग सहयोग की नीतियों पर अमल की शुरुआत की। दुनिया के सर्वहारा वर्ग को ठगने के लिए उन्होंने पूँजीवादी पुनर्स्थापना की अपनी नीतियों को "बाजार समाजवाद" का नाम दिया। लेकिन इस नकली समाजवाद का चरित्र आज पूरी तरह बेनकाब हो चुका है। चीन में समाजवाद की सारी उपलब्धियाँ समाप्त हो चुकी है। कम्पूनों का विघटन हो चुका है। खेती और उद्योग में समाजवाद के राजकीय पूँजीवाद में रूपान्तरण के बाद अब निजीकरण और उदारीकरण की मुहिम बेलगाम जारी है। अब यह केवल समय की बात है कि समाजवाद का चोंगा और नकली लाल झण्डा वहाँ कब धूल में फेंक दिया जायेगा।

माकपा और भाकपा अपने असली चरित्र को ढँकने के लिए आज चीन के इसी "बाजार समाजवाद" के गुण गाती हैं। उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के विरोध का जुबानी जमाखर्च करते हुए ये पार्टियाँ वास्तव में इन्हीं की पैरोकार बनी हुई हैं। बंगाल, केरल और त्रिपुरा में सत्तासीन रहते हुए वे इन्हीं नीतियों को लागू करती हैं, लेकिन केन्द्र में वे इन नीतियों के विरोध की नौटंकी करती हैं और भूमण्डलीकरण की बर्बरता को ढँकने के लिए उसे मानवीय चेहरा देने की, उसकी अन्धाधुन्ध रफ्तार को कम करने की और नेहरूकालीन पब्लिक सेक्टर के ढाँचे को बनाये रखने की वकालत करती हैं। बस यही इनका "समाजवाद" है! ये पार्टियाँ कम्युनिज्म के नाम पर मज़दूर वर्ग की आँखों में धूल झोंककर उन्हें वर्ग-संघर्ष के रास्ते से विमुख करती हैं, उन्हें मात्र कुछ रियायतों की माँग करने और आर्थिक संघर्षों तक सीमित रखती हैं, संसदीय राजनीति के प्रति उनके विभ्रमों को बनाये रखते हुए उनकी चेतना के क्रान्तिकारीकरण को रोकने का काम करती हैं, तथा उनके आक्रोश के दबाव को कम करने वाले 'सेफ्टीवॉल्व' का तथा पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का काम करती हैं।

आज साम्प्रदायिक फासीवाद का विरोध करने का बहाना बनाकर ये संशोधनवादी रंगे सियार कांग्रेस की अगुवाई वाले गठबन्धन सरकार के खम्भे बने हुए हैं। ये संसदीय बातबहादुर भला और कर भी क्या सकते हैं? फासीवाद का मुकाबला करने के लिए मेहनतकश जनता की जुझारू लामबन्दी ही एकमात्र रास्ता हो सकती है, लेकिन वह तो इनके बूते की बात है ही नहीं। ये तो बस संसद में गत्ते की तलवारें भाँज सकते हैं, कभी कांग्रेस की पूँछ में कंघी कर सकते हैं तो कभी तीसरे मोर्चे का घिसा रिकार्ड बजा सकते हैं।

शेर की खाल ओढ़े इन छद्म वामपंथी गीदड़ों की जमात में भाकपा और माकपा अकेले नहीं है। और भी कई नकली वामपंथी छुटभैये हैं और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के बीच से निकलकर भाकपा (मा-ले) लिबरेशन को भी इस जमात में शामिल हुए पच्चीस वर्षों से भी कुछ अधिक समय बीत चुका है।

1967 में नक्सलबाड़ी किसान उभार ने माकपा के भीतर मौजूद क्रान्तिकारी कतारों में जबर्दस्त आशा का संचार किया था। संशोधनवाद से निर्णायक विच्छेद के बाद एक शानदार नयी शुरुआत हुई ही थी कि उसे "वामपंथी" दुस्साहसवाद के राहु ने ग्रस लिया। भाकपा (मा-ले) इसी भटकाव के रास्ते पर आगे बढ़ी और खण्ड-खण्ड विभाजन की त्रासदी का शिकार हुई। कुछ क्रान्तिकारी संगठनों ने क्रान्तिकारी जनदिशा की पोजीशन पर खड़े होकर "वामपंथी" दुस्साहसवाद का विरोध किया था, वे भी भारतीय समाज की प्रकृति और क्रान्ति की मंजिल के बारे में अपनी गलत समझ के कारण जनता के विभिन्न वर्गों की सही क्रान्तिकारी लामबन्दी कर पाने और वर्ग संघर्ष को आगे बढ़ा पाने में विफल रहे। नतीजतन ठहराव का शिकार होकर कालान्तर में वे भी बिखराव और संशोधनवादी विचलन का शिकार हो गये। भाकपा (मा-ले) लिबरेशन पच्चीस वर्षों पहले तक "वामपंथी" दुस्साहसवादी लाइन

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूर साथियो! असली और नकली कम्युनिज्म में फर्क करना सीखो!

संशोधनवाद और मार्क्सवाद : बुनियादी फर्क

भाकपा, माकपा और भाकपा (मा-ले) जैसी पार्टियों का नकली कम्युनिज्म काफी पहले ही बेनकाब हो चुका था। बंगाल-केरल-त्रिपुरा से लेकर केन्द्र तक इनकी राजनीति का छिनाल चरित्र लोगों के सामने है। लेकिन बात सिर्फ इन्हीं पार्टियों की नहीं है। सर्वहारा क्रान्ति की तैयारी से लेकर समाजवादी संक्रमण की लम्बी अवधि के दौरान संशोधनवाद नये-नये रूपों में लगातार क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ विचारधारा और राजनीति की यह घुसपैठ स्वाभाविक है। दुश्मन सामने से लड़कर जो काम नहीं कर पाता, वह घुसपैठियों और भितरघातियों के जरिए अंजाम देता है। संशोधनवाद के प्रभाव के विरुद्ध सतत संघर्ष करने और उस पर जीत हासिल करने तथा बिना सर्वहारा क्रान्ति की सफलता असम्भव है। इसलिए संशोधनवादी राजनीति की पहचान बेहद जरूरी है। इस विषय पर लेनिन, स्तालिन और माओ ने काफी कुछ लिखा है। हमने यहाँ मोटे तौर पर, एकदम संक्षेप में और एकदम सरल ढंग से संशोधनवादी राजनीति और संशोधनवादी पार्टियों के चरित्र के लक्षणों एवं विशेषताओं को खोलकर रखने की एक कोशिश की है।

सम्पादक

- संशोधनवाद बुर्जुआ सुधारवाद का ही नया रूप है और क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन में घुसपैठिए की भूमिका निभाने वाली दक्षिणपंथी अवसरवादी विचारधारा है।
- संशोधनवाद द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद में तोड़-मरोड़ करता है तथा उसे नवकाण्टवाद से मिला देता है।
- संशोधनवाद का मतलब है मार्क्सवाद के खोल में पूँजीवादी राजनीति।
- वर्ग-संघर्ष और क्रान्ति की जुगाली करते हुए भी संशोधनवाद अलग-अलग ढंग से (कभी खुले रूप में तो कभी घुमा-फिराकर, कपटपूर्वक) वर्ग-सहयोग और शान्तिपूर्ण संक्रमण के सिद्धान्त पर आचरण करता है।
- संशोधनवाद मज़दूर वर्ग की चेतना की मात्र आर्थिक संघर्षों व ट्रेडयूनियन के दायरे के भीतर कैद रखता है तथा उसे पूँजीवाद के नाश के ऐतिहासिक मिशन की दिशा में ले जाने के बजाय उससे दूर हटाता है।
- संशोधनवाद पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा पंक्ति के रूप में काम करता है। यह जनाक्रोश के दबाव को रस्मी आन्दोलनों के जरिए कम करने वाले व्यवस्था के सेफ्टीवॉल्व के रूप में काम करता है।
- संशोधनवादी पार्टियों का मूल लक्ष्य चूँकि क्रान्ति नहीं होता, चूँकि 'क्रान्ति-क्रान्ति' का तोतारटन्त करते हुए इन्हें मात्र संसदीय सुअरबाड़े में लोट लगाना होता है और ट्रेड यूनियनों में मज़दूरों पर ही हुकूमत गाँठना होता है, चूँकि पूँजीवादी संविधान और कानून के प्रति इनकी निष्ठा अटूट होती है, इसलिए इनका चरित्र क्रान्तिकारी नहीं होता, ये चवन्निया मेम्बरी वाले ढीले-पोले मण्डली जैसे होते हैं, इनका कोई गुप्त ढाँचा नहीं होता, ये पूरी तरह से बुर्जुआ हुकूमत के रस्मो-करम पर जीने वाले टुकड़खोर होते हैं।

इतिहास में किसी भी नूतन सामाजिक व्यवस्था के जन्म में बल की भूमिका बच्चा पैदा कराने वाली धाय माँ की होती है। प्रकृति हो या समाज, मौजूद स्थिति को बदलने के लिए बल लगाना अनिवार्य होता है। आदिम क़म्यूनों के जमाने से लेकर आज तक का पूरा इतिहास वर्ग संघर्षों और क्रान्तियों का इतिहास रहा है। वर्ग संघर्ष ही अब तक के इतिहास-विकास की मूल चालक शक्ति रही है। वर्ग-सहयोग दो परस्पर विरोधी वर्गों के बीच के टकराव में, किसी पराजित वर्ग की सर्वथा तात्कालिक बेबसी हो सकती है या पराजय के दिनों का एक आभासी सत्य हो सकता है, लेकिन वह वर्गों की सामान्य प्रकृति या किसी भी वर्ग समाज का आम नियम नहीं हो सकता। किसी भी वर्ग-समाज के बुनियादी आर्थिक नियम इसकी इजाजत ही नहीं देते।

अर्थव्यवस्था पर प्रभुत्व रखने वाले वर्ग का केन्द्रीय व सर्वोच्च राजनीतिक संगठन राज्यसत्ता होता है जिसका उद्देश्य विद्यमान सामाजिक आर्थिक ढाँचे को बनाये रखना और दूसरे वर्गों के प्रतिरोध को कुचल देना होता है। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व पर आधारित समाज में राज्यसत्ता सदैव सत्ताधारी शोषक वर्ग की तानाशाही का औजार होती है तथा शोषित जनसाधारण के दमन के लिए एक विशेष शक्ति होती है, चाहे सरकार का रूप कुछ भी हो।

जनवाद (या जनतंत्र या डेमोक्रेसी) कोई वर्गमुक्त या समतामूलक व्यवस्था नहीं होती, जैसा कि बुर्जुआ किताबों में बुर्जुआ जनवाद के बारे में प्रायः लिखा जाता है। बुर्जुआ जनवाद अपने सार रूप में आम जनता पर बुर्जुआ वर्ग का अधिनायकत्व होता है। यह मेहनतकशों और बुद्धिजीवियों को इतनी ही आजादी देता है कि वे बाजार में अपनी शारीरिक श्रमशक्ति और मानसिक श्रमशक्ति बेचकर जीवित रह सकें। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी समाज में जनता को जो भी आजादी और अधिकार हासिल हैं, उन्हें जनता ने अपने लम्बे संघर्षों और कुर्बानियों के द्वारा हासिल किया है। शेष जो भी है, वह आजादी के नाम पर भ्रामक छल है। बुद्धिजीवियों के उस ऊपरी तबके को ज्यादा सुख-सुविधा और आजादी हासिल होती है जो राजकाज और उत्पादन के ढाँचे के प्रबन्धन की जिम्मेदारी उठाकर पूँजीपति वर्ग की सेवा करते हैं। ये ऊपरी तबके के पढ़े-लिखे लोग वास्तव में हुकूमती जमात के ही अंग बन जाते हैं। भारत हो या अमेरिका, किसी भी पूँजीवादी जनवाद में, सेना-पुलिस और जोर-जबर्दस्ती के अन्य साधन राज्यसत्ता के केन्द्रीय उपादान होते हैं। बुर्जुआ चिन्तक-विचारक व्यवस्था को चलाने के नियम-कानून बनाते हैं और नौकरशाही उन्हें अमल में लाती है। सरकारों की भूमिका महज पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी की होती है। संसद मात्र बहसबाजी का अड्डा होती है, मात्र दिखाने के दाँत होती है। वास्तविक फैसले तो पूँजीपतियों के सभाकक्षों में लिए जाते हैं। सरकारें और नौकरशाही उन्हें अमली जामा पहनाती है। पूँजी और राजकीय बल के बूते सम्पन्न होने वाले पूँजीवादी संसदीय चुनाव मात्र यह तय करते हैं कि बुर्जुआ वर्ग की कौन सी पार्टी अब बुर्जुआ वर्ग की मैनेजिंग कमेटी के रूप में काम करेगी।

राज्य के सन्दर्भ में मज़दूर वर्ग का मुख्य कार्यभार बुर्जुआ राजकीय कार्ययंत्र—यानी राज्यसत्ता को चकनाचूर करके समाजवादी जनवाद के रूप में एक नया राजकीय कार्ययंत्र स्थापित करना होता है जो उत्पादन के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व कायम करता है और वर्ग-शोषण के खात्मे की दिशा में आगे कदम बढ़ाता है। समाजवादी जनवाद भी वर्गमुक्त नहीं होता। वह सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व होता है। वह भी बल-प्रयोग का ही उपकरण होता है, पर वह शोषक वर्गों की पूर्ववर्ती राज्यसत्ताओं से इन अर्थों में भिन्न होता है कि वह सभी मेहनतकशों और विशाल आम जनता के हित में काम करता है और अल्पसंख्यक शोषक वर्गों के विरुद्ध बल का प्रयोग करता है। समाजवादी संक्रमण की लम्बी अवधि में आगे जब वर्गों और वर्ग शोषण के सभी रूपों का विलोप होगा तो सर्वहारा राज्यसत्ता का भी विलोपन होता चला जायेगा।

मोटे तौर पर और संक्षेप में, राज्य और क्रान्ति के बारे में मार्क्सवाद-लेनिनवाद के यही बुनियादी सिद्धान्त हैं, जिनमें नकली कम्युनिस्ट तरह-तरह से तोड़-मरोड़ किया करते हैं और इसलिए उन्हें संशोधनवादी कहा जाता है। लेनिन के अनुसार, संशोधनवाद का मतलब होता है मार्क्सवादी खोल में पूँजीवादी अन्तर्वस्तु। संशोधनवादी, किसी न किसी रूप में, कभी खुले तौर पर तो कभी भ्रामक शब्द जाल रचते हुए, वर्ग-संघर्ष के बुनियादी ऐतिहासिक नियम को खारिज करते हुए वर्ग-सहयोग की वकालत करते हैं, बल-प्रयोग और राज्यसत्ता के ध्वंस की ऐतिहासिक शिक्षा को नकार देते हैं और क्रान्ति के बजाय शान्तिपूर्ण संक्रमण की वकालत करते हैं, या फिर क्रान्ति शब्द को शान्तिपूर्ण संक्रमण का पर्याय बना देते हैं। संशोधनवादी इस सच्चाई को नकार देते हैं कि इतिहास में कभी भी शोषक-शासक वर्गों ने अपनी मर्जी से सत्ता त्यागकर खुद अपनी कब्र नहीं खोदी है और कभी भी उनका हृदय-परिवर्तन नहीं हुआ है।

आम तौर पर संशोधनवादियों का तर्क यह होता है कि बुर्जुआ जनवाद और सार्विक मताधिकार ने वर्ग संघर्ष और बलात् सत्ता-परिवर्तन के मार्क्सवादी सिद्धान्त को पुराना और अप्रासंगिक बना दिया है, पूँजीवादी विकास की नयी प्रवृत्तियों ने पूँजीवादी समाज के अन्तरविरोधों की तीव्रता कम कर दी है और अब पूँजीवादी जनवाद के मंचों-माध्यमों का इस्तेमाल करते हुए, यानी संसदीय चुनावों में बहुमत हासिल करके भी समाजवाद लाया जा सकता है। ऐसे दक्षिणपंथी अवसरवादी मार्क्स और एंगेल्स के जीवनकाल में भी मौजूद थे, लेकिन इस प्रवृत्ति को आगे चलकर अधिक व्यवस्थित ढंग से बर्नस्टीन ने और फिर काउत्स्की ने प्रस्तुत किया। लेनिन के समय में इन्हें संशोधनवादी कहा गया। लेनिन ने रूस के और समूचे यूरोप के संशोधनवादियों के खिलाफ अनथक समझौताविहीन संघर्ष चलाया और सर्वहारा क्रान्ति के प्रति उनकी गद्दारी को बेनकाब किया।

सभी प्रकार के संशोधनवादी क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के विभीषण, जयचंद और मीरजाफर होते हैं। वे मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ वर्ग के एजेण्ट का काम करते हैं। वे पूँजीवादी व्यवस्था की दूसरी सुरक्षा-पंक्ति का काम करते हैं। ये मज़दूर वर्ग के सामने खड़े खुले दुश्मन से भी अधिक खतरनाक होते हैं। संशोधनवादी पूँजीवादी संसदीय राजनीति को ही व्यवस्था-परिवर्तन का माध्यम तो मानते ही हैं, साथ ही मज़दूर वर्ग को राज्यसत्ता के ध्वंस के लक्ष्य से दूर रखने के मकसद से, वे उनके बीच न तो क्रान्तिकारी राजनीतिक प्रचार करते हैं, न ही उनके राजनीतिक संघर्षों को आगे विकसित करते हैं। राजनीति के नाम पर बस वे चुनावी राजनीति करते हैं और मेहनतकश जनता का इस्तेमाल मात्र वोट बैंक के रूप में करते हैं। ये पार्टियाँ और उनकी ट्रेड यूनियनें प्रायः मज़दूरों को वेतन-भत्ते आदि की माँगों को लेकर चलने वाले आर्थिक संघर्षों में ही उलझाये रहती हैं और उनकी चेतना को पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दी में बाँधे रखती हैं। प्रायः सीधे-सीधे या घुमा-फिराकर ये यह तर्क देती हैं कि आर्थिक संघर्ष ही आगे बढ़कर राजनीतिक संघर्ष में बदल जाता है। इसके विपरीत सच्चा लेनिनवाद बताता है कि आर्थिक संघर्ष इस व्यवस्था के भीतर मज़दूर वर्ग को संगठनबद्ध होकर अपनी माँगों के लिए लड़ना सिखाता है, लेकिन वह स्वयं विकसित होकर राजनीतिक संघर्ष नहीं बन जाता। मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और राजनीतिक संघर्ष में उसे उतारने का काम आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ शुरू से ही करना होता है। इस तरह अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़ते हुए मज़दूर वर्ग बुर्जुआ राज्यसत्ता को चकनाचूर करने के अपने ऐतिहासिक मिशन को समझता है और उस दिशा में आगे बढ़ता है। मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी सर्वहारा वर्ग के हरावल के रूप में इस काम में नेतृत्वकारी भूमिका निभाती है। संशोधनवादी पार्टियाँ जन संघर्षों को मात्र आर्थिक संघर्षों तक सीमित कर देती हैं और राजनीति के नाम पर केवल वोट बैंक की राजनीति करती हैं।

क्रान्ति के लिए इस्पाती साँचे में ढली पार्टी की जरूरत और उसकी कार्यप्रणाली आदि के बारे में लेनिन ने मार्क्सवादी सिद्धान्त को सुसंगत और सांगोपांग रूप में विकसित किया। इन्हें संगठन के लेनिनवादी उसूलों के रूप में या बोल्शेविक सांगठनिक उसूलों के रूप में जाना जाता है। लेनिन का विचार था कि शोषक वर्गों की सुसंगठित राज्यसत्ता से टकराने के लिए सर्वहारा वर्ग की उतनी ही सुसंगठित इंकलाबी शक्ति की जरूरत होती है। इसीलिए एक क्रान्तिकारी पार्टी शुरू से ही इस बात की पूरी तैयारी रखती है कि वक्त पड़ने पर वह दुश्मन के हर हमले का सामना करके खुद को बिखरने से बचा सके, अन्यथा जनता नेतृत्वविहीन हो जायेगी। जाहिर है कि जिस पार्टी का लक्ष्य इस व्यवस्था को नष्ट करने के लिए राज्यसत्ता से टकराना है, वह एकदम खुले दरवाजे से भरती करने वाली, चवन्निया मेम्बरी बाँटने वाली एक "जन पार्टी" नहीं हो सकती। उसे बहुत छाँट-बीनकर क्रान्तिकारी भरती करनी होगी। ऐसी पार्टी केवल तपे-तपाये, अनुशासित, कर्मठ कार्यकर्ताओं की ही पार्टी हो सकती है, जिसके मेरुदण्ड के रूप में पेशेवर

(पेज 8 पर जारी)

नकली वामपन्थ का असली खूँखार चेहरा

(पेज 1 से आगे)

माकपा के मस्तान और उनके उस्ताद भी ग्यारह महीने पहले की घटनाओं को बार-बार दुहरा रहे हैं। क्या हुआ था ग्यारह महीने पहले?

ग्यारह महीने पहले इस साल के शुरू में हल्दिया विकास प्राधिकरण की एक नोटिस से नन्दीग्राम के किसानों को यह पता चला कि एक केमिकल हब (रासायनिक उद्योगों का क्षेत्र) बनाने के नाम पर इण्डोनेशिया के सलेम नामक औद्योगिक समूह को जमीन मुहैया कराने के लिए उनकी जमीनों का औने-पौने दामों पर अधिग्रहण किया जायेगा। सलेम उद्योग समूह इण्डोनेशिया का वह कुख्यात उद्योग समूह है जिसने सुहार्तो की बर्बर तानाशाही के दौर में कम्युनिस्टों के कत्लेआम में मदद की थी। जमीन अधिग्रहण की नोटिस मिलने के बाद किसानों ने संगठित होना शुरू किया और 6 जनवरी' 07 को भूमि उच्छेद प्रतिरोध समिति बनाकर संघर्ष की शुरुआत कर दी। इस संघर्ष में सक्रिय और संगठनकर्ता की भूमिका निभाने वाले अधिकांश किसान लम्बे समय से माकपा के सदस्य रहे थे। संघर्ष में शिरकत करने वाली अधिकांश आबादी छोटे और गरीब किसानों की है जबकि माकपा के अधिकांश क्षेत्रीय पदाधिकारी धनी किसानों एवं कुलकों के बीच से आते हैं पार्टी के क्षेत्रीय पदाधिकारियों को पार्टी एवं राज्य की नीतियों के खिलाफ़ पार्टी के आम सदस्यों की यह बगावत बेहद नागवार लगी। मध्यकालीन सामन्तों की तरह आम लोगों को अपनी प्रजा समझने वाले क्षेत्रीय माकपा दादाओं ने बगावत की आवाज़ को कुचलने का मन बना लिया। समिति के सदस्यों के घरों पर जाकर डराना-धमकाना और मारना-पीटना आम बात हो गयी। पार्टी के इस रवैये को देखकर समिति की अगुवाई में किसानों ने भी संगठित जुझारू प्रतिरोध करना शुरू किया। नतीजतन दोनों पक्षों के बीच हिंसक झड़पें शुरू हो गयीं। माकपा के एक स्थानीय नेता शंकर सामन्त ने समिति के गठन के अगले ही दिन सात जनवरी को विश्वजीत मैती नामक एक 14 वर्षीय किशोर की गोली मारकर ठण्डी हत्या कर दी। इससे क्रुद्ध होकर किसानों की भीड़ ने शंकर सामन्त के घर में आग लगा दी थी जिसमें शंकर सामन्त की झुलसकर मौत हो गयी थी। इसके बाद माकपा काडरों की गुण्डागर्दी के खिलाफ़ शुरू हुए संगठित प्रतिरोध में जब वे कमजोर पड़ने लगे तो फिर स्थानीय पुलिस के साथ साँठ-गाँठ कर 14 मार्च का नरसंहार रचा गया जिसमें कुल 14 लोग मारे गये। 14 मार्च को हुए गोलीकाण्ड में पुलिस वालों के साथ खाकी वर्दी में माकपा काडर भी शामिल थे। इस बर्बर काण्ड का देश व्यापी विरोध होने के बाद छीछालेदर से बचने के लिए माकपा नेतृत्व ने इस झूठ का सहारा लेना शुरू किया कि जमीन अधिग्रहण की नोटिस हल्दिया विकास प्राधिकरण ने गलती से निकाल दिया था और सरकार ने जमीन अधिग्रहण न करने का फैसला लिया है। 14 मार्च की घटना के बाद समूचे नन्दीग्राम इलाके में किसानों के बीच आक्रोश इतना गहरा था कि आततायी माकपा काडर इलाके में टिक ही नहीं सकते थे। वे भाग खड़े हुए और नन्दीग्राम की सीमा से बाहर खेजुरी इलाके में सरकार द्वारा बनाये गये शरणार्थी शिविरों में रहने लगे।

तब से लेकर पिछले आठ महीनों तक प्रदेश सरकार और माकपाई काडर नन्दीग्राम इलाके में फिर से लौटकर अपना वर्चस्व कायम करने की तैयारियाँ करते रहे। जब सारी तैयारियाँ पूरी हो गयीं तो दीपावली के धूम-धड़ाके के बीच सात नवम्बर को बाकायदा तड़ित-प्रहार की युद्ध-रणनीति बनाकर नन्दीग्राम पर हमला बोल दिया गया। इस बार राज्य की पुलिस साथ में नहीं थी। इतना ही नहीं, जहाँ-जहाँ 14 मार्च के बाद पुलिस चौकियाँ बनायी गयी थीं उन्हें हटा लिया गया। पुराने थानों में जो पुलिस वाले थे उन्हें भी निर्देश दे दिया गया था कि कोई कार्रवाई करने की जरूरत नहीं है। जानकार सूत्रों के अनुसार इस हमले के लिए भारी संख्या में बिहार से भी गुण्डों को बुलाया गया था। इनकी संख्या काफी थी और इनके पास काफी मात्रा में गोला-बारूद था। इस हथियारबन्द कार्रवाई में लोगों के घर बमों से उड़ाये गये, लोगों को अन्धाधुन्ध गोलियों से भूना गया और हर भाड़े की सेना की तरह इस माकपा सेना ने भी लोगों का मनोबल तोड़ने के लिए औरतों के साथ जघन्य बलात्कार किये। दसियों हजार लोग अपने घरों से उजड़ गये। इन्होंने एकजुट होकर इस बर्बर कार्रवाई के विशेष में जुलूस निकाला जिस पर भी माकपा काडरों ने हमले किये। चार-पाँच दिनों के इस खूनी अभियान के बाद 'इलाके पर दखल' कर लिया गया। नरेन्द्र मोदी ने गोधरा के बाद अपने सैनिकों को 72 घण्टे तक खून खराबा करने की खुली छूट दी थी, बुद्धदेव ने चार दिनों का समय दिया फिर सी.आर.पी.एफ. आयी और 12 नवम्बर से शान्ति बहाली शुरू हो गयी। गुजरात में भी केन्द्र सरकार मूकदर्शक बनी रही और यहाँ भी। दोनों जगह केन्द्रीय बटालियन तब पहुँची जब खेल खत्म हो चुका था। नन्दीग्राम में ग्यारह महीने बाद फिर माकपा का गुण्डा राज कायम हो गया।

अब देखिये सात जनवरी और सात नवम्बर के ग्यारह महीनों के बारे में बुद्धदेव भट्टाचार्य क्या फरमाते हैं : 'भूमि उच्छेद प्रतिरोध समिति ग्यारह महीनों से नन्दीग्राम पर राज कर रही थी। उसने हमारे काडर को घरों से उखाड़कर खदेड़ा और अत्याचार करके सताया। वहाँ पुलिस जा नहीं सकती थी क्योंकि मैं 14 मार्च को दुहराना नहीं चाहता था। अब बड़े लोग (जाने-माने बुद्धिजीवी) विरोध में उठ खड़े हुए हैं लेकिन तब कोई नहीं बोल रहा था जब हमारे लोग मारे जा रहे थे। हमारे काडर को इस तरह जबरदस्ती नहीं घुसना पड़ता और यह खून-खराबा भी नहीं होता अगर केन्द्र से केन्द्रीय सुरक्षा बल समय से पहुँच जाता।'

आपने सुनी बुद्धदेव के गले से नरेन्द्र मोदी की आवाज़! माकपाई गुण्डों के इस सरगना को इस बात का बड़ा मलाल है कि जब 'उसके लोग' घरों से खदेड़े जा रहे थे तब 'बड़े लोग' कहाँ थे। बुद्धदेव की यह नालिश वैसी ही है जैसे भगतसिंह की हिमायत करने वालों से कोई कहे कि उस समय तुम कहाँ थे जब साण्डर्स को गोली मारी गयी थी। जो बुद्धिजीवी माकपाई काडरों की गुण्डागर्दी के खिलाफ़ आवाज़ उठा रहे हैं वे नन्दीग्राम के उत्पीड़ित किसानों के साथ खड़े हैं। वे उत्पीड़कों और उत्पीड़ितों दोनों के साथ कैसे खड़े हो सकते हैं। यह सामान्य सी सच्चाई बुद्धदेव भट्टाचार्य, प्रकाश करात और सीताराम येचुरी जैसे पूँजी के चाकरों को भला कहाँ समझ में आयेगी। पूँजीपतियों के हाथों अपनी आत्मा और बुद्धि-विवेक का सौदा कर चुके मज़दूर वर्ग के इन घिनौने गद्दारों को मार्क्सवाद का यह बुनियादी ककहरा भला कैसे याद होगा कि वर्गों में बँटे समाज में न तो कोई निरपेक्ष सत्य हो सकता है और न ही कोई निरपेक्ष न्याय। सत्य और न्याय का निर्धारण इस बात से होता है कि आप किस पक्ष में खड़े हैं। बुद्धदेव एण्ड कम्पनी ने अपना पक्ष बहुत पहले ही तय कर लिया है। वे बहुत पहले ही सर्वहारा वर्ग का पाला बदलकर पूँजीपति वर्ग के पाले में खड़े हो चुके हैं। अब वे पूँजीपति वर्ग के पाले में खड़े होकर सर्वहारा वर्ग के खिलाफ़ वर्ग संघर्ष का संचालन कर रहे हैं। इसलिए अगर बुद्धदेव के मुँह से नरेन्द्र मोदी की आवाज निकल रही है तो आश्चर्य की कोई बात नहीं। दोनों पूँजी के चाकर हैं। दोनों ने राज्य प्रायोजित नरसंहार रचे। एक साम्प्रदायिक फासीवादी है तो दूसरा सामाजिक फासीवादी यानी कथनी में समाजवादी करनी में फासीवादी।

'राजनीतिक-प्रशासनिक विफलता' या राजनीतिक प्रतिरोध और संशोधनवादी जघन्यता

नन्दीग्राम में माकपाई काडरों की बर्बरता की देश भर में हो रही थू-थू और माकपा समर्थक व्यापक बुद्धिजीवी समुदाय द्वारा विरोध में आवाज़ उठाने से घबराये बुद्धदेव भट्टाचार्य ने एक बयान जारी कर कहा है कि नन्दीग्राम राजनीतिक-प्रशासनिक विफलता का प्रतीक है। बुद्धदेव का यह माफीनामा कोई पछतावा नहीं है। यह बंगाली भद्रलोक की नाराजगी से उपजी मजबूरी और बचाव की मुद्रा में खड़े काडरों को दिया गया मक्कारी भरा राजनीतिक तर्क है। साथ ही यह सफेद झूठ भी है। नन्दीग्राम राजनीतिक-प्रशासनिक विफलता का प्रतीक नहीं राज्य प्रायोजित बर्बरता और संशोधनवादी जघन्यता का प्रतीक है। नन्दीग्राम एक राजनीतिक प्रतिरोध है। राज्य के विरोध में उठ खड़ी हुई जनता को दिया गया सामूहिक दण्ड है। केवल व्यापकता और मात्रा का फर्क हो सकता है लेकिन इसकी तुलना अगर इस्रायली जियनवादियों द्वारा अपने वतन की आजादी के लिए लड़ने वाली फलस्तीनी जनता को दिये जाने वाले सामूहिक दण्ड के खूनी कारनामों से या साम्राज्यवादियों द्वारा उनके कब्जे के विरोध में आवाज़ उठाने वाली जनता को दी जाने वाली सजाओं से की जा रही है तो कोई गलत नहीं है।

माकपा काडरों के खूनी कारनामों को जायज ठहराने के लिए माकपा समर्थक बुद्धिजीवी बेहयाई के साथ नन्दीग्राम में माओवादियों की मौजूदगी और तृणमूल कांग्रेस की साजिश से होने वाले उपद्रवों को जिम्मेदार ठहरा रहे हैं। सरकारी वामपन्थी बुद्धिजीवी बनकर सुख-सुविधाओं की मलाई काटने वाले कलम के ये उठाईगीर इस सच्चाई पर पर्दा डाल रहे हैं कि अगर नन्दीग्राम के मेहनतकश किसानों ने संगठित होकर प्रतिरोध नहीं किया होता तो वे अब तक अपनी जमीनों से हाथ धो चुके होते और सलेम ग्रुप के केमिकल हब की नींव पड़ चुकी होती। किसानों के इस संगठित प्रतिरोध का ही नतीजा था कि मजबूरन बुद्धदेव सरकार को नन्दीग्राम की जगह नयचर में 'केमिकल हब' बनाने का ऐलान करना पड़ा। किन-किन राजनीतिक पार्टियों या समूहों ने इस संघर्ष को संगठित करने में मदद की या कौन-सी पार्टियों ने संघर्ष की आँच पर अपने राजनीतिक स्वार्थों की रोटियाँ सेंकी यह बिल्कुल दीगर बात है। यह सवाल खड़ा कर ये बौद्धिक धृतराष्ट्र बुनियादी मुद्दे को आँखों से ओझल कर रहे हैं।

नन्दीग्राम के किसानों ने अगर अपना अस्तित्व बचाने की लड़ाई में सशस्त्र प्रतिरोध भी किया हो तो यह उनके द्वारा की गयी प्रतिहिंसा ही थी जो राज्यसत्ता एवं माकपा काडरों की हिंसा के जवाब में थी। इस सशस्त्र प्रतिरोध का उन्हें नैतिक अधिकार था। लेकिन साम्राज्यवाद और आततायी राज्यसत्ताओं के विरुद्ध जनता के सशस्त्र प्रतिरोध का समर्थन करने वाले इन संशोधनवादी पाखण्डियों का असली वर्ग चरित्र तब पूरी तरह उजागर हो जाता है जब बुद्धदेव भट्टाचार्य नन्दीग्राम में राज्यसत्ता और माकपाई काडरों की हिंसा को कानूनी और नैतिक रूप से जायज ठहराते हैं। दरअसल गरीबों-मजलूमों के मुक्तिसंघर्ष से गद्दारी कर चुकी बुद्धदेव एण्ड कम्पनी आज जिस सम्पत्तिशाली वर्ग की नुमाइन्दगी कर रही है उस वर्ग की नैतिकता यही कहती है कि सम्पत्तिहीनों की बगावत को कुचलने के लिए उठाया जाने वाला हर कदम नैतिक और कानूनी है। इसीलिए देश का समूचा पूँजीपति वर्ग आज एक स्वर से बुद्धदेव के साथ खड़ा है। बुद्धदेव के लिए नन्दीग्राम के सम्पतिवान वर्गों से आने वाले नेतृत्वकारी काडर ही जनता है। आम काडर तो बगावत कर अपनी गरीब-मेहनतकश जमात के साथ जा खड़ा हुआ है। जब बुद्धदेव भट्टाचार्य यह फरमा रहे हैं कि नन्दीग्राम राजनीतिक एवं प्रशासनिक विफलता है तो उनका तात्पर्य यह नहीं कि वे नन्दीग्राम के आम किसानों की सुरक्षा करने में नाकाम रहे हैं। उनका तात्पर्य यह है कि वे नन्दीग्राम की आम जनता के कोप से अपनी जनता (माकपाई काडर) की सुरक्षा करने में नाकाम रहे हैं। जब ये लोग कह रहे हैं कि अब और नन्दीग्राम नहीं तो उनका तात्पर्य यह कि अब इसका पुख्ता इन्तजाम करेंगे कि जनता माकपाई काडर से बगावत न कर सके। उनका तात्पर्य यह है कि अब वे ज्यादा मक्कारी के साथ देशी-विदेशी पूँजी के एजेण्डे को आगे बढ़ायेंगे।

नन्दीग्राम के बहाने चुनावी राजनीति

नन्दीग्राम ने चुनावी राजनीति को काफी सरगर्म बना दिया है। ममता बनर्जी और उनकी तृणमूल कांग्रेस का तो समूचा राजनीतिक वजूद ही माकपा विरोध पर टिका है इसलिए नन्दीग्राम पर ममता बनर्जी का लाल-पीला होना किसी के लिए आश्चर्यजनक नहीं। उनकी पार्टी भूमि उच्छेद प्रतिरोध समिति को सक्रिय समर्थन दे रही है। ममता बनर्जी अपना चुनावी आधार बढ़ाने के लिए सिंगूर और नन्दीग्राम मसले का भरपूर इस्तेमाल करने में जुटी हैं। असलियत यह है कि देशी-विदेशी पूँजी की हिमायत करने या 'सेज' की नीति से ममता बनर्जी का कोई उसूली विरोध नहीं है। वह नन्दीग्राम और सिंगूर के किसानों के साथ इसलिए खड़ी हैं क्योंकि चुनावी राजनीति में उन्हें माकपा के खिलाफ़ खड़े होना है।

ममता बनर्जी ही नहीं नन्दीग्राम मसले को हवा देकर अपनी चुनावी गोटी लाल करने में वे सभी चुनावी पूँजीवादी पार्टियाँ जुटी हुई हैं जिनका 'सेज' बनाने की नीतियों से कोई विरोध नहीं है और अलग-अलग राज्यों में इनमें से कई पार्टियों की सरकारें 'सेज' बनवाने के लिए कवायदें कर रही हैं। कांग्रेस इस मुद्दे का अलग ढंग से इस्तेमाल करने में जुटी है। चूँकि माकपा यू.पी.ए. सरकार को समर्थन दे रही है इसलिए वह परमाणु करार पर सौदेबाजी के लिए नन्दीग्राम के मसले का इस्तेमाल कर रही है। माकपा से उसकी अपेक्षा है कि 'तुम परमाणु करार पर अगर चुप रहो तो हम नन्दीग्राम पर या तो चुप रहेंगे, या केवल बुदबुदायेंगे या शान्ति-शान्ति का मंत्र जाप करेंगे।'

नन्दीग्राम पर वाम मोर्चे के भीतर जो दरार नजर आ रही है वह केवल वक्ती है। भाकपा, फारवर्ड ब्लाक या आर.एस.पी. अपना दामन साफ दिखाने के लिए भले ही अपने बड़े बिरादर से नाराज नजर आयें लेकिन उनकी नाराजगी कभी इतनी आगे नहीं बढ़ सकती कि वे मोर्चे से किनारा कर लें। उनकी नाराजगी केवल अपना वोट बैंक बचाने के लिए है और यह दिखाने के लिए है कि वे माकपा के पापकर्म में वे भागीदार नहीं।

नन्दीग्राम और माओवाद का भूत

नन्दीग्राम में अपने कुकर्मों को जायज ठहराने के लिए माकपा नेता बार-बार माओवाद का भूत दिखा रहे

(पेज 7 पर जारी)

हमारा प्रस्थान-बिन्दु है तन-मन से जनता की सेवा करना

• माओ त्से-तुङ

साथियो! अब जबकि हम अपने कार्यों को और उन्हें पूरा करने के लिए निर्धारित की जाने वाली नीतियों को समझ गए हैं, इन नीतियों को कार्यान्वित करते समय और इन कार्यों को पूरा करते समय हमारा रुख कैसा होना चाहिए?

वर्तमान अन्तरराष्ट्रीय और घरेलू परिस्थिति ने हमारे लिए और चीनी जनता के लिए उज्ज्वल भविष्य का रास्ता खोल दिया है तथा अभूतपूर्व अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं; यह स्पष्ट है और इसके बारे में किसी किस्म के सन्देह की गुंजाइश नहीं है। लेकिन साथ ही अब भी कुछ गम्भीर कठिनाइयाँ मौजूद हैं। जो लोग सिर्फ़ उज्ज्वल पक्ष को ही देखते हैं और कठिनाइयों को नहीं देखते, वे पार्टी द्वारा निर्धारित कार्यों को पूरा करने के लिए कारगर रूप से संघर्ष नहीं कर सकते।

चीनी जनता के साथ मिलकर हमारी पार्टी ने अपने इतिहास के चौबीस वर्षों में, जिनमें जापानी-आक्रमण-विरोधी युद्ध के आठ वर्ष भी शामिल हैं, चीनी राष्ट्र के अन्दर भारी शक्ति का निर्माण किया है; हमारे काम की सफलता बिलकुल स्पष्ट है और इसके बारे में किसी किस्म के सन्देह की गुंजाइश नहीं है। लेकिन साथ ही हमारे काम में अब भी कमियाँ मौजूद हैं। जो लोग सिर्फ सफलता के पक्ष को ही देखते हैं और कमियों को नहीं देखते, वे पार्टी द्वारा निर्धारित कार्यों को पूरा करने के लिए कारगर रूप से संघर्ष नहीं कर सकते।

1921 में जन्म लेने के बाद से चौबीस वर्षों में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तीन महान संघर्षों से गुजर चुकी है—उत्तरी अभियान, भूमि-क्रान्ति युद्ध और जापानी-आक्रमण-विरोधी युद्ध जो अब भी जारी है। हमारी पार्टी ने शुरू से ही मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त को अपना आधार बनाया है, क्योंकि मार्क्सवाद-लेनिनवाद दुनिया के सर्वहारा वर्ग की सबसे ज्यादा सही और सबसे ज्यादा क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का निचोड़ है। जब मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई को चीनी क्रान्ति के ठोस अमल के साथ मिलाया जाने लगा, तो चीनी क्रान्ति ने एक बिलकुल नई शकल अख्तियार कर ली तथा नव-जनवाद की एक समूची ऐतिहासिक मंजिल का उदय हो गया। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त और विचारधारा से लैस होकर चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने चीनी जनता के लिए एक नवीन कार्यशैली को खोज निकाला है, एक ऐसी कार्यशैली को जो मुख्यतः सिद्धान्त को व्यवहार के साथ मिलाती है, जनता के साथ घनिष्ठ सम्पर्क कायम करती है और आत्म-आलोचना के तरीके पर अमल करती है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सर्वव्यापी सच्चाई को, जो समूची दुनिया के सर्वहारा वर्ग के संघर्ष के व्यवहार को प्रतिबिम्बित करती है, जब चीनी सर्वहारा वर्ग और विशाल जन-समुदाय के क्रान्तिकारी संघर्ष के ठोस अमल के साथ मिलाया जाता है तो वह चीनी जनता के लिए एक अजेय शस्त्र बन जाती है। यह स्थिति चीनी कम्युनिस्ट पार्टी हासिल कर चुकी है। हमारी पार्टी हर तरह के कठमुल्लावाद और अनुभववाद के, जो इस उसूल के विपरीत है, ख़िलाफ़ दृढ़ता से संघर्ष करके विकसित हुई है और आगे बढ़ी है। कठमुल्लावाद ठोस व्यवहार से नाता तोड़ लेता है, जबकि अनुभववाद आंशिक अनुभव को सर्वव्यापी सच्चाई समझ बैठता है; ये दोनों ही प्रकार के अवसरवादी विचार मार्क्सवाद के विपरीत हैं। हमारी पार्टी ने अपने चौबीस वर्षों के संघर्ष के दौरान इस प्रकार के गलत विचारों के ख़िलाफ़ सफलतापूर्वक संघर्ष चलाया है और वह अब भी यह संघर्ष चला रही है, तथा इस प्रकार अपने को विचारधारात्मक तौर पर अधिकाधिक सुदृढ़ बनाती जा रही है। अब हमारी पार्टी के सदस्यों की तादाद 12,10,000 हो गई है। इन सदस्यों की भारी बहुसंख्या प्रतिरोध-युद्ध के दौरान पार्टी में शामिल हुई है, तथा उनकी विचारधारा में विभिन्न प्रकार के दोष मौजूद हैं। यही बात कुछ ऐसे सदस्यों पर भी लागू होती है जो प्रतिरोध-युद्ध से पहले पार्टी में शामिल हुए। पिछले कुछ वर्षों में किया गया दोष-निवारण का काम अत्यन्त सफल रहा है और उक्त दोषों को दूर करने में काफ़ी कामयाबी हासिल हो चुकी है। इस कार्य को जारी रखा जाना चाहिए तथा "भावी गलतियों से बचने के लिए पिछली गलतियों से सबक सीखने" और "मरीज को बचाने के लिए उसकी बीमारी का इलाज करने" की भावना के साथ पार्टी के भीतर विचारधारात्मक शिक्षा का और अधिक व्यापक रूप से विकास किया जाना चाहिए। हमें पार्टी के सभी स्तरों पर काम करने वाले नेतृत्वकारी कार्यकर्ताओं को यह बात समझा देनी चाहिए कि सिद्धान्त और व्यवहार की घनिष्ठ एकरूपता एक ऐसी विशेषता है जो हमारी पार्टी को बाकी तमाम राजनीतिक पार्टियों से भिन्न बना देती है। इसलिए विचारधारात्मक शिक्षा वह मुख्य कड़ी है जिस पर महान राजनीतिक संघर्षों के लिए समूची पार्टी को एकताबद्ध करते समय मजबूत गिरफ्त रखनी चाहिए। जब तक यह नहीं किया जाता, तब तक पार्टी अपना कोई भी राजनीतिक कार्य पूरा नहीं कर सकती।

एक अन्य विशेषता, जो हमारी पार्टी को बाकी तमाम राजनीतिक पार्टियों से भिन्न बना देती है, यह है कि व्यापकतम जन-समुदाय के साथ हमने अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध कायम कर लिए हैं। हमारा प्रस्थान-बिन्दु है तन-मन से जनता की सेवा करना और एक क्षण के लिए भी जन-समुदाय से अलग न होना, सभी मामलों में केवल जनता के हितों को ही आधार बनाना, न कि अपने व्यक्तिगत हितों अथवा किसी छोटे ग्रुप के हितों को, तथा जनता के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पार्टी के नेतृत्वकारी संगठनों के प्रति अपनी जिम्मेदारी के साथ एकरूप कर देना। कम्युनिस्टों को हर समय सच्चाई का पक्षपोषण करने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि हर सच्चाई जनता के हित में होती है; कम्युनिस्टों को हर समय अपनी गलतियाँ सुधारने के लिए तैयार रहना चाहिए, क्योंकि गलतियाँ जनता के हित के विरुद्ध होती हैं। पिछले चौबीस वर्षों का अनुभव हमें यह सिखाता है कि सही कार्य, सही नीति और सही कार्यशैली एक निश्चित समय और स्थान में अनिवार्य रूप से जन-समुदाय की माँगों के अनुरूप होते हैं और अनिवार्य रूप से जन-समुदाय के साथ हमारे सम्बन्धों को सुदृढ़ बना देते हैं, तथा गलत कार्य, गलत नीति और गलत कार्यशैली एक निश्चित समय और स्थान में अनिवार्य रूप से जन-समुदाय की माँगों के अनुरूप नहीं होते और अनिवार्य रूप से हमें जन-समुदाय से अलग कर देते हैं। कठमुल्लावाद, अनुभववाद, फरमानशाही, दुमछल्लावाद, संकीर्णतावाद, नौकरशाही और काम के दौरान अहंकारपूर्ण रवैया अपनाना, इस प्रकार की बुराइयाँ आखिर निश्चित रूप से नुकसानदेह और असहनीय क्यों हैं तथा इन बुराइयों से ग्रस्त लोगों को आखिर इन्हें क्यों दूर करना चाहिए, इसका कारण यह है कि ये बुराइयाँ हमें जन-समुदाय से अलग कर देती हैं। हमारी कांग्रेस को समूची पार्टी का आवाहन करना चाहिए कि वह सतर्क रहे और इस बात की ओर ध्यान दे कि किसी भी पद पर काम करने वाला कोई भी साथी जन-समुदाय से अलग न रहे। उसे हर एक साथी को यह सिखाना चाहिए कि वह जनता को प्यार करे तथा जन-समुदाय की आवाज़ को ध्यान से सुने; जहाँ कहीं भी वह जाए, जन-समुदाय के साथ एकरूप हो जाए, तथा जन-समुदाय से ऊपर रहने की बजाय उसके बीच घुलमिल जाए; तथा उसके वर्तमान स्तर को देखते हुए उसे जागृत करे अथवा उसकी राजनीतिक चेतना को उन्नत करे, और कदम-ब-कदम स्वेच्छा से संगठित होने और उन तमाम आवश्यक संघर्षों को कदम-ब-कदम चलाने में उसकी मदद करे जिन्हें उस समय और उस स्थान की अन्दरूनी और बाहरी परिस्थितियों में चलाया जा सकता है। फरमानशाही पर अमल करना सभी तरह के कामों में गलत है, क्योंकि जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना के स्तर से आगे बढ़ने और स्वेच्छा के उसूल का उल्लंघन करने वाली यह प्रवृत्ति जल्दबाजी की बीमारी को जाहिर करती है। हमारे साथियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि जिन बातों को वे खुद समझते हैं उन्हें जन-समुदाय भी समझता है। आम जनता उन बातों को समझती है अथवा नहीं तथा वह कार्यवाही करने के लिए तैयार है अथवा नहीं, इसका पता सिर्फ जन-समुदाय के बीच जाने और जाँच-पड़ताल करने से ही चल सकता है। अगर हम ऐसा करेंगे, तो हम फरमानशाही से बच जाएँगे। किसी काम में दुमछल्लावादी रुख अपनाना भी गलत है, क्योंकि जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना के स्तर से पिछड़ जाने वाली और जन-समुदाय का आगे की ओर नेतृत्व के उसूल का उल्लंघन करने वाली यह प्रवृत्ति सुस्ती की बीमारी को जाहिर करती है। हमारे साथियों को यह नहीं सोचना चाहिए कि उन बातों को जन-समुदाय भी नहीं समझता जिन्हें हमारे साथी खुद अभी तक नहीं समझ पाते। यह बात अक्सर देखने में आती है कि जन-समुदाय हमसे आगे बढ़ जाता है तथा एक कदम और आगे बढ़ने को लालायित रहता है; फिर भी हमारे साथी जन-समुदाय के नेता की भूमिका अदा नहीं कर पाते और कुछ पिछड़े हुए तत्वों के दुमछल्ले बन जाते हैं, उनके विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं, इतना ही नहीं उनके विचारों को गलती से व्यापक जन-समुदाय के विचार समझ बैठते हैं। संक्षेप में, हर कामरेड को यह समझा देना चाहिए कि एक कम्युनिस्ट की कथनी और करनी की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि वे जनता की भारी बहुसंख्या के सर्वोच्च हितों के अनुरूप हैं अथवा नहीं तथा उनका जनता की भारी बहुसंख्या समर्थन करती है अथवा नहीं। हर एक साथी को यह बात समझने में मदद दी जानी चाहिए कि यदि हम जनता पर भरोसा रखें, जन-समुदाय की असीमित सृजन-शक्ति पर पक्का विश्वास रखें तथा इस प्रकार जन-समुदाय पर विश्वास करें और उसके साथ एकरूप हो जाएँ, तो हम हर मुश्किल पर काबू पा सकेंगे, तथा हमें कोई भी दुश्मन पछाड़ नहीं सकेगा और हम हर दुश्मन को पछाड़ देंगे।

('समूची पार्टी एक हो जाए और अपने कार्यों को पूरा करने के लिए संघर्ष करे')

नकली वामपन्थ का असली खूँखार चेहरा

(पेज 6 से आगे)

हैं। सीताराम येचुरी ने तो पत्रकारों से बातचीत करते हुए यहाँ तक कहा कि नन्दीग्राम के उपद्रव के पीछे कांग्रेस, कारपोरेट मीडिया, तृणमूल कांग्रेस, विदेशी पैसे से चल रही गैर सरकारी संस्थाओं और माओवादियों की मिली-जुली साजिश है। नन्दीग्राम के राजनीतिक सदमे से दिमागी सन्तुलन खो बैठा व्यक्ति ही ऐसा ऑय-चॉय-सॉय बक सकता है।

बहरहाल, अगर यह मान भी लिया जाये कि नन्दीग्राम में माओवादी मौजूद हैं और वे किसानों के संघर्ष को संगठित करने में मदद कर रहे हैं तो सवाल यह है कि वे कौन सा गलत काम कर रहे हैं। आप माओवादियों की विचारधारा, उनकी राजनीति और उनकी कार्यप्रणाली से सहमत हैं या असहमत, यह अलग बात है। यहाँ मसला यह है कि अगर वे नन्दीग्राम के किसानों के जायज संघर्ष में साथ खड़े हैं तो क्या गलत कर रहे हैं। अगर राज्यसत्ता और माकपा काडरों की हिंसा व गुण्डागर्दी के ख़िलाफ़ संघर्ष में नन्दीग्राम के किसानों को मदद पहुँचाकर माओवादी उनके दिलों में जगह बना रहे हैं तो इसमें उनका क्या दोष है? कोई भी व्यक्ति जिसका दिल-दिमाग ठीक से काम कर रहा है वह तो नन्दीग्राम में अन्याय और अत्याचार के विरोध में खड़े माओवादियों की भूमिका की प्रशंसा ही करेगा। दरअसल, जिस तरह गुजरात 2002 ने तथाकथित हिन्दुत्ववादियों का असली चेहरा दिखा दिया था उसी तरह नन्दीग्राम ने मार्क्स-लेनिन का नाम लेने वाले इन तथाकथित कम्युनिस्टों का असली चेहरा दिखा दिया है। इसलिए, वे माओवाद के भूत की ओट में वे अपना खूनी चेहरा छिपा रहे हैं।

नकली लाल झण्डे को धूल में फेंको

'बिगुल' का यह अंक छपते-छपते खबर आयी कि नन्दीग्राम में दो सामूहिक कब्रें बरामद हुई हैं। आशंका व्यक्त की जा रही है कि इनमें दबी हड्डियाँ मारे गये किसानों की हैं। यह आशंका भी जाहिर की जा रही है कि दर्जनों लाशों को नन्दीग्राम से होकर गुजरने वाली हल्दी नदी में डुबो दिया गया है। अगर खोज-बीन की जाये तो उन्हें भी बरामद किया जा सकता है। लेकिन वामपन्थ का लबादा ओढ़े कातिलों की जमात अपने कुकर्मों को झूठ के नीचे दबाने में जुटी हुई है। कलकत्ता उच्च न्यायालय के उस फैसले के ख़िलाफ़ बुद्धदेव सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका भी दाखिल कर दी है जिसमें 14 मार्च की गोलीबारी के लिए पहली नजर में राज्य सरकार को दोषी ठहराया गया था, मृतकों को राज्य सरकार द्वारा पाँच-पाँच लाख रुपये का मुआवजा देने और समूचे घटनाक्रम की सी.बी.आई. जाँच का आदेश दिया गया था। राज्य सरकार का कहना है कि सी.बी.आई. जाँच की जरूरत नहीं। उसकी पुलिस द्वारा सी. आई.डी. जाँच ही पर्याप्त है।

इस तरह, एक तरफ वाम मोर्चा नन्दीग्राम का सच सामने न आने देने की हरसम्भव कवायद में जुटी है, वहीं दूसरी ओर लाशों के ढेर में खड़ा बुद्धदेव भट्टाचार्य रोज यह बयान दे रहा है कि नन्दीग्राम की घटनाओं के बावजूद प्रदेश में देशी-विदेशी पूँजीनिवेश पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। देश के मज़दूर वर्ग को अब इन तथाकथित वामपन्थी युद्ध सरदारों को अन्तिम रूप से पहचान लेना चाहिए। ये मज़दूर वर्ग के दुश्मन हैं और पूँजीपतियों-साम्राज्यवादियों के दलाल हैं। इनके नकली लाल झण्डे को उन्हें निर्णायक रूप से धूल में फेंक देना चाहिए और असली लाल झण्डे को उठाकर अपनी मुक्ति की राह पर आगे बढ़ना चाहिए। असली लाल झण्डा कभी देशी-विदेशी पूँजी की हिमायत नहीं कर सकता। असली लाल झण्डा देश के मेहनतकश अवाम को एकजुट और गोलबन्द कर पूँजी के राज को उखाड़ फेंकने के निर्णायक संघर्ष का शंखनाद करेगा।

सोहराबुद्दीन 'इनकाउण्टर' की असली कहानी

नरेन्द्र मोदी और समूचे भगवा ब्रिगेड द्वारा प्रचारित यह कहानी पूरी तरह झूठी है कि सोहराबुद्दीन एक खतरनाक आतंकवादी था और उसके लश्कर-ए-तैयबा से सम्पर्क थे। यह भी पूरी तरह झूठ है कि उसके पास से ए. के. 47 रायफल बरामद हुआ था। गुजरात पुलिस के रिकार्ड के मुताबिक राजस्थान निवासी यह व्यक्ति एक साधारण अपराधी था। उसके खिलाफ़ फिरौती, अपहरण और हत्या सम्बन्धी कुछ मामले दर्ज थे। उसके इनकाउण्टर की असली कहानी यह थी कि 22 नवम्बर 2005 को रात 1.30 बजे हैदराबाद से सांगली जाने वाली एक बस को तीन पुलिस अधिकारियों ने रोका और सोहराबुद्दीन, उसकी पत्नी और सोहराबुद्दीन के एक सहयोगी तुलसी राम प्रजापति को बस से उतार लिया। नरेन्द्र मोदी के चहेते ये तीनों पुलिस अधिकारी थे—गुजरात के पुलिस उपमहानिरीक्षक डी.जी. वंजारा, गुजरात के ही एस.पी. राजकुमार पाण्डियान और राजस्थान के एस.पी. एम.एन.दिनेश। तीनों पुलिस अधिकारी उस समय सादी वर्दी में थे और क्वालिस से बस का पीछा कर रहे थे। सोहराबुद्दीन की इस बस यात्रा की मुखबिरी खुद तुलसी राम प्रजापति ने ही की थी।

बस से उतारने के बाद पुलिस अधिकारियों ने तीनों को तीन दिनों तक अहमदाबाद के एक निजी फार्म हाउस में रखा गया। 25 नवम्बर '05 को मुठभेड़ की एक झूठी कहानी गढ़कर सोहराबुद्दीन की हत्या कर दी गयी और प्रचारित कर दिया गया कि वह एक 'खतरनाक आतंकवादी' था। उसकी पत्नी कौसर बी 'लापता' हो गयी और तुलसी राम प्रजापति को आजाद कर दिया गया।

सोहराबुद्दीन को मुठभेड़ में मार डालने की खबर जानने के बाद उसके भाई रुबाबुद्दीन शेख ने इस रहस्यमय 'इनकाउण्टर' पर सवाल उठाते हुए सुप्रीम कोर्ट को एक पत्र लिखा और मामले की सी.बी.आई. से जाँच कराने की माँग की। रुबाबुद्दीन ने अपनी भाभी के 'लापता' होने पर भी सवाल उठाते हुए एक बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका दाखिल की। सुप्रीम कोर्ट ने पत्र का संज्ञान लेते हुए प्रदेश सरकार को उच्च स्तरीय जाँच कराने का निर्देश दिया। गुजरात सरकार ने खानापूरी के लिए मामले की सी.आई.डी. जाँच के लिए प्रदेश सी.आई.डी. की आई.जी. सुश्री गीता जौहरी को जाँच की जिम्मेदारी सौंप दी। लेकिन गीता जौहरी ने चाहे अपनी 'कर्तव्यनिष्ठा' या 'ईमानदारी' के चलते या प्रदेश की मोदी सरकार और केन्द्र सरकार के अन्तरविरोधों के चलते जब जाँच की प्रक्रिया आगे बढ़ायी और सुप्रीय कोर्ट को तीन अन्तरिम रिपोर्टें प्रस्तुत कीं तो 'इनकाउण्टर' की असली कहानी उजागर हो गयी और तीनों पुलिस अधिकारियों को गिरफ्तार करना पड़ा।

गीता जौहरी की जाँच रिपोर्ट से यह भी पता चला कि सोहराबुद्दीन की हत्या के बाद उसकी पत्नी कौसर बी को वंजारा के गृहनगर हिम्मतनगर स्थित फार्म हाउस ले जाया गया जहाँ कुछ दिनों तक उसके साथ सामूहिक बलात्कार करने के बाद उसकी भी हत्या कर दी गयी और लाश को जला दिया गया। सुप्रीम कोर्ट में दायर बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका के बाद गुजरात सरकार को भी मजबूरन यह कबूलना पड़ा कि कौसर बी की हत्या हो चुकी है।

जब गीता जौहरी की जाँच आगे बढ़ी तो सोहराबुद्दीन की हत्या के एकमात्र चश्मदीद गवाह तुलसी राम प्रजापति को गवाही के लिए तलब किया गया। यह जानकारी लगने के बाद तीनों पुलिस अधिकारियों ने उसको भी ठिकाने लगाने की योजना बना ली और उसे अंजाम दे दिया। तुलसी राम वर्ष 2006 के मध्य में किसी मामले में गिरफ्तार होकर जेल में था। 28 दिसम्बर 2006 को उसे भी एक फर्जी मुठभेड़ दिखाकर मार डाला गया। जिस जेल में वह बन्द था वहाँ से दूसरी जेल में ट्रांसफर कराकर ले जाते समय रास्ते में उसे मार डाला गया। कहा गया कि उसने साथ जा रहे पुलिस वालों पर हमला कर दिया था।

गीता जौहरी ने अपनी जाँच रिपोर्ट में यह भी संकेत दिया था कि मोदी सरकार के गृह राज्य मंत्री अमित शाह ने जाँच को प्रभावित करने की कोशिश की थी। वैसे इस मामले में सीधे आई.पी.एस. अधिकारियों की संलिप्तता यह बताने के लिए काफी है कि राज्य सरकार सीधे इसमें शामिल है।

इसलिए, अगर भरी सभा में नरेन्द्र मोदी सोहराबुद्दीन की हत्या को जायज ठहराता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह एक तरह से अपने जुर्म का इक़बाल है। क्या सुप्रीम कोर्ट स्वयं इसका संज्ञान लेते हुए मोदी को हत्या के लिए दोषी ठहरायेगा?

नरेन्द्र मोदी ने कानूनी तौर पर अपना बचाव करते हुए फर्जी मुठभेड़ों के लिए तीनों पुलिस अधिकारियों को ही दोषी ठहराते हुए गुजरात सरकार की ओर सुप्रीम कोर्ट में हलफ़नामा दायर कर रखा है। मोदी के भाषण के बाद सुप्रीम कोर्ट में गुजरात सरकार की ओर से पैरवी कर रहे वकील के.टी.एस. तुलसी ने यह कहा है कि जब तक मोदी गुजरात की जनता से अपने बयान के लिए माफी नहीं माँगते तब तक वे गुजरात सरकार के वकील की जिम्मेदारी नहीं उठायेंगे। अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुनने के लिए के.टी.एस. तुलसी को साधुवाद! लेकिन उन्हें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि नरेन्द्र मोदी जैसों को अपने मानवता विरोधी अपराधों पर कभी पछतावा होगा। सुप्रीम कोर्ट सजा दे या न दे जनता की अदालत इन कातिलों को एक दिन अवश्य सज़ा सुनायेगी।

"लोकतंत्र" की बिसात पर खूनी साम्प्रदायिक खेल

(पेज 1 से आगे)

ने भी सोनिया गाँधी के इस भाषण की शिकायत चुनाव आयोग से कर दी। चुनाव आयोग ने सोनिया गाँधी को भी नोटिस दे दी है। आयोग ने सोनिया के साथ ही कांग्रेस के वरिष्ठ नेता दिग्विजय सिंह को भी नोटिस पकड़ा दी है क्योंकि उन्होंने भी एक सभा में नरेन्द्र मोदी को 'हिन्दू आतंकवादी' कह दिया था।

चुनाव आयोग की इन तमाम कवायदों और भाजपा-कांग्रेस की बयानबाजियों के बीच समूचे गुजरात का समाज साम्प्रदायिकता के जहरीले वातावरण से भर उठा है। गुजरात के अल्पसंख्यक मुस्लिम समुदाय को 2002 का खूनी मंजर दुःस्वप्न बनकर फिर से सताने लगा है। इस सबके बीच 'दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र' का नाटक जारी है। तथाकथित विकास के हाशिये पर धकेल दी गयी गुजरात की आम हिन्दू, मुसलमान और आदिवासी मेहनतकश आबादी साम्प्रदायिक राजनीति की चुनावी बिसात पर 'लोकतंत्र' के राजाओं-वजीरों के हाथों प्यादों की तरह पिटने पर मजबूर हैं।

गुजरात के इस चुनावी मंजर और आम आबादी के सामने विकल्पहीनता के आलम ने संसदीय लोकतंत्र की सीमाओं को पूरी तरह उजागर कर दिया है। जो प्रगतिशील और धर्मनिरपेक्ष लोग संसदीय जनतंत्र के दायरे के भीतर साम्प्रदायिक फासीवाद को शिकस्त देने के बारे में सोचते हैं उन्हें अब तो अपनी सोच बदल लेनी चाहिए। उन्हें इतिहास का यह सबक भी कभी नहीं भूलना चाहिए कि संसदीय लोकतंत्र की सीढ़ी पर चढ़कर ही हिटलर भी जर्मनी की सत्ता में पहुँचा था। उन्हें यह समझना ही होगा कि व्यापक मेहनतकश आवाम की क्रान्तिकारी एकजुटता की बुनियाद पर संगठित क्रान्तिकारी संघर्ष के रास्ते ही साम्प्रदायिक फासीवादी ताकतों को उखाड़ फेंका जा सकता है।

संशोधनवाद और मार्क्सवाद : बुनियादी फर्क

(पेज 5 से आगे)

क्रान्तिकारियों (पूरावक्ती संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं) की टीम हो। लेनिन के नेतृत्व में बोल्शेविकों का मत था कि पार्टी सदस्यता केवल ऐक्टिविस्टों के स्तर तक, यानी पार्टी की विचारधारा और लाइन को मानकर उसके किसी न किसी संगठन में काम करने वालों को ही दी जानी चाहिए, जबकि मार्तोव के नेतृत्व में मेंशेविकों का कहना था कि जो भी पार्टी की लाइन को स्वीकार करके सदस्यता शुल्क भर दे, उसे सदस्यता दी जा सकती है। लेनिन का कहना था कि ऐसी ढीली-ढाली पार्टी एक संगठित दस्ते के रूप में सर्वहारा क्रान्ति को नेतृत्व नहीं दे सकती।

लेनिन का कहना था कि एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी पूँजीवादी जनवाद की स्थितियों का लाभ तो उठायेगी, लेकिन अधिकतम पूँजीवादी जनवाद की स्थिति में भी वह पूरी तरह से खुले ढाँचे वाली पार्टी नहीं हो सकती। इसका मतलब होगा, अपने को बुर्जुआ वर्ग और उसकी राज्यसत्ता की मर्जी पर छोड़ देना। अस्तित्व का संकट पैदा होते ही कोई भी बुर्जुआ राज्यसत्ता बुर्जुआ जनवाद को पूर्णतः निरस्त करके बर्बर दमनकारी बन जाती है और क्रान्ति को कुचल डालने के लिए निर्णायक चोट सर्वहारा के हरावल दस्ते पर ही करती है। एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी तमाम खुले और कानूनी संघर्षों में भागीदारी करते हुए हर कठिनाई के लिए तैयार रहती है और अपना गुप्त ढाँचा अनिवार्यतः बरकरार रखती है। परिस्थिति अनुसार वह संघर्ष के उन रूपों को भी अवश्य अपनाती है जो बुर्जुआ संविधान और कानून को स्वीकार नहीं होते। आर-पार की फैसलाकुन लड़ाई का लक्ष्य हर हमेशा उसके सामने होता है और शासक वर्ग के साथ उसकी हर झड़प और हर लड़ाई उसी की तैयारी की कड़ी होती है। बुर्जुआ संसद और संसदीय चुनावों के बारे में भी मार्क्सवाद का नजरिया बिल्कुल साफ है। पर्याप्त आधार एवं ताकत वाली कोई क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी अपने लक्ष्य एवं कार्यक्रम के प्रचार के लिए तथा बुर्जुआ व्यवस्था के भण्डाफोड़ के लिए संसदीय चुनावों और बुर्जुआ संसद के मंच का इस्तेमाल परिस्थिति अनुसार और आवश्यकतानुसार कर सकती है। ऐसे इस्तेमाल को "टैक्टिकल" या कार्यनीतिक या रणकौशलात्मक इस्तेमाल कहा जाता है। लेकिन संसदीय मार्ग से, पूँजीवाद से समाजवाद में शान्तिपूर्ण संक्रमण असम्भव है। संसदीय चुनाव किसी भी सूरत में सर्वहारा क्रान्ति की रणनीति (स्ट्रैटजी) नहीं हो सकता, केवल रणकौशल (टैक्टिक्स) के रूप में ही इसका इस्तेमाल हो सकता है।

लेनिनवादी समझ के ठीक विपरीत, दुनिया की सभी संशोधनवादी पार्टियाँ चवन्निया मेम्बरी बाँटा करती हैं, उनका पूरा ढाँचा पूरी तरह खुला हुआ और ढीला-पोला होता है। जाहिर है कि जिन्हें क्रान्ति करनी ही न हो, वे पार्टियाँ ऐसा ही करेंगी। मज़दूरों को धोखा देने के लिए वे क्रान्ति, समाजवाद, कम्युनिज्म आदि शब्दों की जुगाली करती रहती हैं, लेकिन काम के नाम पर मज़दूरों को केवल आर्थिक संघर्षों में उलझाये रखती हैं, चुनाव लड़कर संसदीय सुअरबाड़े में जाकर लोट लगाने के लिए जुगत भिड़ाती रहती हैं, पूँजीवादी नीतियों के रस्मी विरोध की कवायद करती हुई जनता को ठगती रहती हैं।

भारत में भी रँगे सियारों की ऐसी दर्जनों जमातें हैं, लेकिन इनमें भी भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी, लिबरेशन) सर्वप्रमुख हैं। ये पार्टियाँ नाम तो मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन का लेती हैं, लेकिन इनके आराध्य हैं काउत्स्की, मार्तोव, अल ब्राउडर, टीटो, ख्रुश्चेव और देङ सियाओ-पिङ जैसे संशोधनवादी सरगना। भाकपा और माकपा के नकली कम्युनिज्म का गन्दा चेहरा तो काफी पहले ही नंगा हो चुका है, अब भाकपा (मा-ले) की कलई भी खुलती जा रही है। संशोधनवादी और अतिवामपंथी दुस्साहसवादी भटकावों से लड़े बिना भारत का मज़दूर वर्ग अपनी क्रान्तिकारी पार्टी नये सिरे से खड़ी करने के काम को कतई अंजाम नहीं दे सकता। क्रान्तिकारी विचारधारा का मार्गदर्शन क्रान्ति की सर्वोपरि शर्त है। इसलिए जरूरी है कि भारत का मज़दूर वर्ग असली और नकली कम्युनिज्म के बीच फर्क करना सीखे। संशोधनवाद को सही ढंग से समझने के लिए, यूँ तो बहुत सारा मार्क्सवादी साहित्य मौजूद है, लेकिन मज़दूर साथी खासकर **'राज्य और क्रान्ति'**, **'सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार काउत्स्की'**, **'महान बहस'** (सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की बहस के दस्तावेज) और राज्य एवं क्रान्ति के प्रश्न पर चीनी सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के कुछ चुनिन्दा दस्तावेजों का अध्ययन कर सकते हैं। बल्कि उन्हें ऐसा अवश्य ही करना चाहिए।

लुधियाना के औद्योगिक मज़दूरों की माँगे–एक मसविदा

1. आठ घण्टे की दिहाड़ी का नियम सख्ती से लागू करवाया जाए।
2. वर्कर की इच्छा के विरुद्ध जबर्दस्ती ओवर टाइम लगवाया जाना बन्द किया जाए।
3. ठेके पर रखे गए मज़दूरों को पक्का किया जाए। ठेकेदारी प्रथा पर पूरी तरह रोक लगाई जाए।
4. हर मज़दूर का कम से कम वेतन 500 रुपये प्रति महीना होना चाहिए।
5. फैक्टरियों में होने वाले हादसों/दुर्घटनाओं के लिए मुआवजा मिले।
6. फैक्टरियों में होने वाले हादसों के लिए स्पष्ट कारण पूँजीपतियों द्वारा मज़दूरों की सुरक्षा प्रति दिखाई जाने वाली लापरवाही है। काम के दौरान हादसों से सुरक्षा हेतु जरूरी कदम उठाएँ जाएँ।
7. नौकरी पर रखते समय मज़दूरों को नियुक्ति पत्र जारी होना चाहिए।
8. वेतन तथा अडवांस निर्धारित समय पर मिलना चाहिए।
9. मज़दूरों को फैक्टरी की ओर से पहचान पत्र और हाजरी कार्ड जारी हों।
10. आम तौर पर मज़दूरों से सप्ताह के सातों दिन काम करवाया जाता है। एक साप्ताहिक छुट्टी जरूर दी जाए।
11. प्रावीडैण्ट फण्ड (पी.एफ.) और ई.एस.आई. लागू हो।
12. बोनस के नाम पर मिठाई के डिब्बे, बर्तन आदि नहीं चलेंगे। कानून मुताबिक सलाना वेतन का कम से कम 8.33 प्रतिशत बोनस लागू हो जो कि लगभग एक महीने के वेतन के बराबर बनता है।
13. घर से फैक्टरी आने-जाने की सुविधा कम्पनी की ओर से मुहैया करवाई जाए।
14. फैक्टरी में एक मुनाफा-रहित कैंटीन हो।
15. मौसम अनुसार वर्दी कम्पनी की ओर से ही उपलब्ध हो।
16. हर मासिक वेतन के साथ वेतन पर्ची (पेस्लिप) भी अवश्य मिले।
17. मुनाफे की हवस के चलते फैक्टरी मालिक प्रदूषण को रोकने के लिए कुछ भी नहीं करते–जिससे वहाँ काम करने वाले मज़दूरों की सेहत पर बहुत ही बुरा असर पड़ता है। प्रदूषण रोकने के लिए जरूरी कदम उठाएँ जाएँ।
18. प्रदूषण वाले कामों में बीमारियों से बचने के लिए गुड़, दूध आदि उपलब्ध करवाना होता है जो कि लागू नहीं हो रहा। यह लागू हो।
19. लेबर कोर्ट पहुँचाने वाली शिकायतों का निपटारा 6 महीनों में अन्दर-अन्दर होना चाहिए।
20. पिछले कुछ वर्षों के दौरान लुधियाना में हुई फैक्टरी हड़तालों में भाग लेने की वजह से मज़दूरों को जानबूझ कर तंग करने के लिए उनके खिलाफ झूठे पुलिस केस दर्ज किए गए। यह सभी पुलिस केस वापस लिए जाएँ।
21. लुधियाना के पुलिस प्रशासन तथा अन्य सरकारी तंत्र में पंजाब में बाहरी राज्यों से काम करने आए मज़दूरों के साथ इलाकाई आधार पर भेदभाव बन्द हो।
22. इस्पेक्टर राज खत्म करने के नाम पर मज़दूरों के हक में बने कानून लागू न करने के लिए पूँजीपतियों को पंजाब सरकार द्वारा खुली छूटें दी जा रही है। ये कार्रवाई भी बन्द की जाए।
23. विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाकर देशी-विदेशी पूँजीपतियों को दिये जा रहे विशेषाधिकार मेहनतकश जनता के साथ गम्भीर धोखाधड़ी की जा रही है। इस नीति को यहीं ठप किया जाए और पुराने विशेष आर्थिक क्षेत्र तुरन्त भंग किए जाएँ।
24. श्रम कानूनों में मज़दूर विरोधी परिवर्तनों को रोका जाए।
25. देश के सर्वोच्च और अन्य न्यायालयों द्वारा पिछले समय में कई मज़दूर विरोधी फैसले सुनाएँ गए हैं जिनमें मज़दूरों के हड़ताल करने के अधिकार पर भी हमला किया गया है। मज़दूर वर्ग के जनवादी अधिकारों का हनन करते इन सभी मज़दूर विरोधी फैसलों को वापस लिया जाए।
26. आर्थिक-राजनीतिक हड़तालों/प्रदर्शनों के दौरान प्रशासन/पुलिस का रवैया पूरी तरह मज़दूर विरोधी होता है। पूँजीपतियों की यह पक्षधरता बन्द की जाए।
27. मज़दूरों के संगठित होने की राह में मालिकों और पुलिस द्वारा अनेकों प्रकार

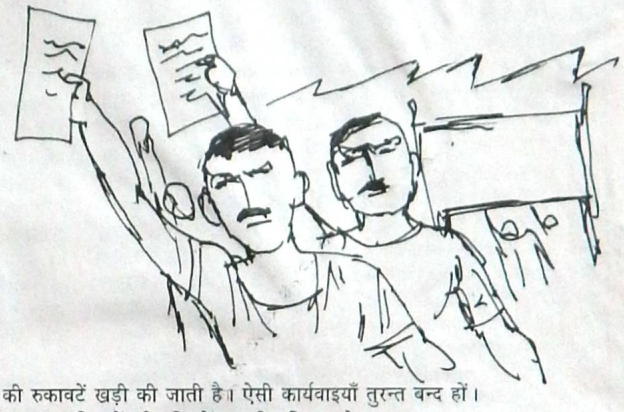

की रुकावटें खड़ी की जाती है। ऐसी कार्यवाइयाँ तुरन्त बन्द हों।
28. मज़दूर यूनियनों की रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया को आसान बनाया जाए।
29. शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं के निजीकरण की प्रक्रिया पर रोक लगाई जाए।
30. मज़दूरों के बच्चों को सरकार द्वारा मुफ्त शिक्षा उपलब्ध कराई जाए।
31. बाल मज़दूरी पर सख्ती से रोक लगाई जाए। बाल मज़दूरों की शिक्षा तथा गुजर-बसर की व्यवस्था सरकार करे।
32. महँगाई पर रोक लगाई जाए। रोजमर्रे में इस्तेमाल होने वाली वस्तुएँ मज़दूरों को सरकार द्वारा सस्ते दामों पर उपलब्ध करवाई जाएँ।
33. 1 मई का दिन पूरी दुनिया के मज़दूर अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के रूप में मनाते हैं। इस दिन होने वाले जलसे-जुलूसों में भाग लेने से रोकने के लिए पूँजीपति मज़दूरों को काम से छुट्टी नहीं देते। हमारी यह जोरदार माँग है कि मज़दूर वर्ग को उनका 1 मई की छुट्टी का अधिकार हासिल हो।

महिला मज़दूरों की विशेष माँगें–

1. एक ही काम के लिए औरतों और मर्दों को दिए जाने वाले वेतन में असमानता खत्म की जाए।
2. किसी भी हालत में औरतों को रात की शिफ्ट में काम पर न लगाया जाए।
3. गर्भवस्था के चलते मज़दूर औरतों को तनख्वाह सहित छुट्टी मिलनी चाहिए और डिलेवरी का पूरा खर्च कम्पनी उठाए।
4. औरतों के साथ छेड़-छाड़, गाली-गलोज आदि बदसलूकी के खिलाफ कड़ी कार्यवाई हो।
5. मज़दूर औरतों के छोटे बच्चों के लिए कम्पनी शिशु गृह बनाए।

मज़दूर/गरीबों की रिहायश सम्बन्धी माँगें–

1. मज़दूरों की रिहायश की व्यवस्था मालिकों द्वारा की जाए या मकान किराया दिया जाए।
2. गरीबों की बस्तियों में साफ-सफाई की समुचित व्यवस्था की जाए।
3. गरीब बस्तियों में फैलने वाली बीमारियों के वक्त प्रशासन की ओर से कोई कार्यवाई नहीं होती अगर होती भी है तो बहुत ही ढुलमुल और दिखावटी। ऐसी मुसीबतों के समय व्यवहारिक कदम उठाएँ जाएँ और पीड़ितों का मुफ्त में इलाज किया जाए।
4. गरीब बस्तियों में, पहली बात तो यह कि पीने के पानी की उपलब्धता ही बहुत कम रहती है। जो पानी आता भी है वो भी गन्दा। साफ और नियमित पानी की गारण्टी की जाए।
5. गरीब आबादी क्षेत्रों में आबादी के हिसाब से पर्याप्त गिनती में सरकारी हस्पताल और डिस्पेंसरियाँ खोली जाएँ जहाँ बेहतर और सस्ता इलाज हो सके।

यह माँग पत्रक लुधियाना में मज़दूरों के बीच सक्रिय नौजवान भारत सभा तथा बिगुल मज़दूर दस्ता के कार्यकर्ताओं ने मज़दूरों के बीच अपने काम, अनुभव तथा जाँच पड़ताल के आधार पर तैयार किया है। निश्चय ही इसमें अभी काफी कुछ जोड़ते-घटाने की गुंजाइश है। हम मज़दूर साथियों तथा मज़दूरों के बीच सक्रिय साथियों से अनुरोध करते हैं कि इस माँग पत्रक पर अपने सुझाव/संशोधन हमें अवश्य भेंजे ताकि इस माँग पत्रक को और अधिक परिपूर्ण बनाया जा सके।

–बिगुल मज़दूर दस्ता, लुधियाना

नन्दीग्राम और वामपन्थ समर्थक बुद्धिजीवियों का विधवा-विलाप

नन्दीग्राम में माकपा काडरों के खूनी कारनामों से माकपा काडधारी बुद्धिजीवियों-लेखकों के अलावा वामपन्थ समर्थक अन्य बुद्धिजीवी भौंचक हैं। पार्टी कार्डधारी बुद्धिजीवी तो तरह-तरह के कुतर्कों का जाल रचकर पार्टी के दामन पर लगे खून के धब्बों की सफाई कर रहे हैं लेकिन वाम राजनीतिक धारा के समर्थक अन्य बुद्धिजीवी नहीं समझ पा रहे हैं कि मज़दूरों-किसानों की आवाज़ उठाने वाली, साम्प्रदायिक फासीवाद के खिलाफ़ लड़ने वाली पार्टी को क्या हो गया है। वे छाती पीट-पीटकर विधवा विलाप कर रहे हैं। 'हंस' पत्रिका के स्वनामधन्य सम्पादक राजेन्द्र यादव दिसम्बर'07 अंक के सम्पादकीय में लिखते हैं, "...सिंगूर और नन्दीग्राम में जो नरसंहार हो रहा है, उसने देश के सारे उन बुद्धिजीवियों को दहला दिया है, जिन्होंने मार्क्सवाद का पहाड़ा पढ़ते हुए आँखें खोली थीं।" वह आगे लिखते हैं, "मुझ या मेरे जैसे हज़ारों लेखकों-विचारकों के लिए सचमुच कितनी भयंकर यातना है कि हम अपने ही सपनों का यह घिनौना संहार देख रहे हैं।"

यह अकेले राजेन्द्र यादव का विलाप नहीं है। उन जैसे हज़ारों लेखकों-बुद्धिजीवियों का है जिन्होंने उन बच्चों की तरह मार्क्सवाद का पहाड़ा रटा है जो मास्टर की छड़ी या कोई खौफ़नाक मंजर देखकर सब कुछ भूल जाते हैं। हो सकता है कि राजेन्द्र यादव जैसे लोगों ने तोतारटन्त शैली में मार्क्सवाद का पहाड़ा जरूर पढ़ा हो लेकिन इसमें सन्देह है कि मार्क्सवादी विचारधारा का श्रमसाध्य ढंग से अध्ययन-अनुशीलन शायद ही किया हो। अन्यथा वे सी.पी.एम. मार्का मार्क्सवाद को मार्क्सवाद का पर्यायवाची मानकर रुदालियों की तरह विलाप नहीं करते।

इन कथित वामपन्थ समर्थक बुद्धिजीवियों को सिंगूर एवं नन्दीग्राम नरसंहार के बाद ही यह समझ में आया है कि "बंगाल में पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से एकछत्र शासन चलाने वाली पार्टी... अपनी मूल प्रतिज्ञाओं से हटकर दमन और अत्याचार पर उतर आयी है।" राजेन्द्र यादव जैसों को यह समझना चाहिए कि केवल 'वामपन्थ समर्थक' का लेबल लगा लेने से कोई मार्क्सवादी बुद्धिजीवी नहीं बन जाता। एक ईमानदार और जिम्मेदार मार्क्सवादी बुद्धिजीवी बनने के लिए कम से कम मार्क्सवाद की मूल प्रस्थापनाओं, मार्क्सवादी विचारधारा के जन्म से लेकर आज तक के ऐतिहासिक विकास, विश्व सर्वहारा के ऐतिहासिक संघर्ष के प्रमुख मील के पत्थरों और समय-समय पर मार्क्सवादी विचारधारा के खेमे के भीतर से उभरने वाली प्रमुख विजातीय धाराओं-प्रवृत्तियों के इतिहास की बुनियादी समझदारी जरूर हासिल कर लेनी चाहिए। इसकी नाजानकारी के चलते ही ऐसी अपेक्षाएँ पलती रहती हैं जो वास्तविक नहीं होतीं। अगर राजेन्द्र यादव जैसे वामपन्थी बुद्धिजीवियों को देश के कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास की उसकी विभिन्न धाराओं-प्रवृत्तियों के बीच समय-समय पर चले वैचारिक संघर्षों के इतिहास की औसत समझदारी भी होती तो सिंगूर और नन्दीग्राम की घटनाओं से उन्हें सदमा नहीं लगा होता। तब उन्हें यह जानकारी भी होती कि सीपीएम और सीपीआई जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ अपनी "मूल प्रतिज्ञाओं" से काफी पहले ही हट चुकी हैं और उनके राजनीतिक आचरण-भ्रष्टता का इतिहास चार दशक से भी अधिक पुराना है।

दरअसल, वाम मोर्चे की पार्टियाँ वैचारिक रूप से पथभ्रष्ट होने के बाद ही पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था के दायरे के भीतर सत्ता सुख हासिल करती रही हैं। उनके द्वारा जनता के दमन और अत्याचार का इतिहास भी काफी पुराना है। सिंगूर और नन्दीग्राम में तो केवल उनके पूँजीपरस्त-दमनकारी चरित्र की एक और नयी और निश्चय ही ज्यादा घृणित बानगी सामने आयी है।

भारत की अविभाजित कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा देश के मेहनतकश अवाम के साथ विश्वासघात की शुरुआत तो तेलंगाना किसान संघर्ष के दौर में 1951 में ही हो गयी थी जब तत्कालीन नेतृत्व ने नेहरू सरकार के सामने आत्मसमर्पण के बाद तेलंगाना के किसानों और कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का जो कत्लेआम हुआ क्या उसकी जानकारी इन 'वामपन्थी बुद्धिजीवियों' को नहीं है? इसके बाद 1956 में सोवियत संघ में ख्रुश्चेव के पार्टी महासचिव बनने के बाद उसके द्वारा प्रतिपादित 'शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व', "शान्तिपूर्ण संक्रमण" और "शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता" के मार्क्सवाद विरोधी सिद्धान्तों ने भारत के कम्युनिस्ट नेतृत्व को अपने अवसरवाद और विश्वासघात को छुपाने का सैद्धान्तिक जामा भी मुहैय्या करा दिया। नतीजतन 1958 में अमृतसर में हुए विशेष पार्टी अधिवेशन में क्रान्तिकारी संघर्ष के रास्ते को पूरी तरह त्यागकर संसदमार्गी बन जाने का निर्णय ले लिया गया। कहने का मतलब कि 1964 में पार्टी के विभाजन के पूर्व ही नेतृत्व क्रान्तिकारी मार्क्सवाद को त्यागकर पाला बदल चुका था। 1964 में जब पार्टी दो हिस्सों—भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (भाकपा) और भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी)—(माकपा) में विभाजित हुई तो पार्टी कतारों का क्रान्तिकारी हिस्सा भले की माकपा में शामिल हुआ लेकिन नेतृत्व ने संसदीय मार्ग पर चलने की नीति में कोई परिवर्तन नहीं किया। नेतृत्व के इस अवसरवादी रवैये के विरोध में कतारों में जो असन्तोष मौजूद था वह 1967 में नक्सलबाड़ी में हुए किसान उभार के बाद फूट पड़ा जब माकपा नेतृत्व के खिलाफ़ आम कार्यकर्ताओं ने खुली बगावत का ऐलान किया और फलस्वरूप पार्टी में एक और विभाजन के बाद कम्युनिस्ट आन्दोलन की उस धारा का जन्म हुआ जिसे शासक वर्ग द्वारा प्रचारित शब्दावली में नक्सलवादी आन्दोलन कहा जाता है।

नक्सलबाड़ी किसान उभार के समय पश्चिम बंगाल में बंगला कांग्रेस के अजय मुखर्जी के नेतृत्व में जो मिली-जुली सरकार कायम थी उसमें वाम मोर्चा भी शामिल था। ज्योति बसु उस सरकार के गृह एवं पुलिस मंत्री थे और हरेकृष्ण कोन्नार कृषि मंत्री। नक्सलबाड़ी के किसानों ने माकपा के दार्जिलिंग जिला कमेटी के नेतृत्व में जमीन पर मालिकाना हक़ के लिए संघर्ष शुरू किया था और 1969 में भा.क.पा. (मा-ले) के गठन और चारु मजूमदार के नेतृत्व में आतंकवादी कार्यदिशा लागू करने के पूर्व यह आन्दोलन जनदिशा पर आधारित था। इस आन्दोलन से जुड़े किसानों और अपनी ही पार्टी के कार्यकर्ताओं के दमन की शुरुआत ज्योति बसु के नेतृत्व में ही हुई थी। इसके बाद वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू होने के बाद कलकत्ता की सड़कों पर सिद्धार्थशंकर राय के नेतृत्व में नक्सलवाद का दमन करने के नाम पर हजारों नौजवानों के खून से जो होली खेली गयी, कम से कम उसका इतिहास तो राजेन्द्र यादव जैसे लोगों को याद ही होगा।

क्रान्तिकारी जनदिशा पर शुरू हुए नक्सलबाड़ी किसान संघर्ष का आगे चलकर चारु मजूमदार के नेतृत्व में आतंकवादी कार्यदिशा (वामपन्थी दुस्साहसवादी) में मुड़ना और उसके बाद कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की विडम्बनाओं-संकटों की चर्चा अलग से एक विस्तृत निबन्ध का विषय है। यहाँ केवल यह याद दिला देना काफी है कि भाकपा-माकपा नेतृत्व के हाथ केवल नन्दीग्राम और सिंगूर के किसानों और बागी कार्यकर्ताओं के खून से ही नहीं रंगे हैं। हमें तेलंगाना और नक्सलबाड़ी की खूँरेजी को नहीं भूलना चाहिए जिसके कर्ता-धर्ताओं में भाकपा-माकपा नेतृत्व शामिल है। यही हत्यारे आज नन्दीग्राम नरसंहार को जायज ठहराने के लिए माओवादियों का भूत खड़ा कर रहे हैं।

राजेन्द्र यादव जैसे "वामपन्थी बुद्धिजीवियों" को अब तो अपनी आँखों पर पड़ी पट्टी उतार लेनी चाहिए और संसदीय वामपन्थ की असलियत को समझ लेना चाहिए। नन्दीग्राम नरसंहार रचने वाले आप जैसों की आलोचनाओं से नहीं सुधरने वाले। आलोचनाएँ उस पर असर करती हैं जो नासमझी में गलतियाँ करता है। लेकिन बुद्धदेव भट्टाचार्य, प्रकाश कारत और सीताराम येचुरी जैसों की जमात नासमझों की जमात नहीं हैं। ये पूरे होशोहवास में मज़दूर वर्ग का खेमा छोड़कर पूँजी के खेमे में दाखिल हुए हैं और उसकी हिफाजत और खिदमत के लिए ये बर्बरता की हर सीमा को लाँघ जायेंगे। इसीलिए इस जमात को सामाजिक फासीवादी कहा जाता है—यानी कथनी में समाजवादी और करनी में फासीवादी।

योगेश पन्त

भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में संशोधनवाद

(पेज 4 से आगे)

का शिकार था। पर उसके पिट जाने के बाद धीरे-धीरे रेंगते-घिसटते आज दक्षिणपंथी भटकाव के दूसरे छोर तक जा पहुँचा है और आज खोंटी संसदवाद की बानगी पेश कर रहा है।

भाकपा (माओवादी) आज "वामपंथी" दुस्साहसवाद के भटकाव का प्रतिनिधित्व कर रहा है और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु को बदनाम कर रहा है। अन्य कई सारे कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठन हैं जो अलग-अलग अंशों में संशोधनवादी भटकावों-विच्युतियों के शिकार हैं और भारतीय समाज के पूँजीवादी चरित्र की असलियत को समझने के बजाय आज भी नई जनवादी क्रान्ति के चरखे पर "मार्क्सवादी" नरोदवाद का सूत काते जा रहे हैं। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर आज लम्बे गतिरोध का शिकार होकर विघटित होने के मुकाम तक जा पहुँचा है। हालाँकि आज भी कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी तत्वों की सबसे बड़ी तादाद इसी धारा के संगठनों में मौजूद है, लेकिन इन संगठनों को एकजुट करके आज एक सर्वभारतीय पार्टी का पुनर्गठन एक असम्भवप्राय काम हो चुका है। अब नये सिरे से मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सुसंगत एवं गहरी समझ तथा भारतीय क्रान्ति के कार्यक्रम की सही समझ के आधार पर एक क्रान्तिकारी पार्टी का नये सिरे से निर्माण करके ही भारत में सर्वहारा क्रान्ति को अंजाम तक पहुँचाया जा सकता है।

इसके लिए हमें क्रान्ति की कतारों में नई भरती करनी होगी, उनकी क्रान्तिकारी शिक्षा-दीक्षा और व्यावहारिक प्रशिक्षण के काम को लगन और मेहनत से पूरा करना होगा, कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं को संशोधनवादियों और अतिवामपंथी कठमुल्लों का पुछल्ला बने रहने से मुक्त होने का आह्वान करना होगा और इसके लिए उनके सामने क्रान्तिकारी जनदिशा की व्यावहारिक मिसाल पेश करनी होगी। लेकिन इस काम को सार्थक ढंग से तभी अंजाम दिया जा सकता है जबकि कम्युनिस्ट आन्दोलन के इतिहास से सबक लेकर हम अपनी विचारधारात्मक कमजोरी को दूर कर सकें और बोल्शेविक साँचे-खाँचे में तपी-ढली पार्टी का ढाँचा खड़ा कर सकें। संशोधनवादी भीतरघातियों के विरुद्ध निरन्तर समझौताहीन संघर्ष के बिना तथा मज़दूर वर्ग के बीच इनकी पहचान एकदम साफ किये बिना हम इस लक्ष्य में कदापि सफल नहीं हो सकते। बेशक हमें अतिवामपंथी भटकाव के विरुद्ध भी सतत संघर्ष करना होगा, लेकिन आज भी हमारी मुख्य लड़ाई संशोधनवाद से ही है।

दो दिवसीय बाल मेले का आयोजन

लुधियाना (पंजाब) 16-17 अक्टूबर 2007। शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर नौजवान भारत सभा की पखोवाल इकाई (लुधियाना जिला, पंजाब) की ओर से बाल मेले का आयोजन किया गया। इस बाल मेले में भाषण, लेख, कविता पाठ के साथ-साथ पेंटिंग प्रतियोगिता भी करवायी गयी। भाषण और लेख प्रतियोगिता के लिए ये विषय दिये गए—भगतसिंह का जीवन, उनकी विचारधारा और आज की पीढ़ी, उनके सपनों का समाज। कविता पाठ का विषय भी शहीद भगतसिंह का जीवन ही रखा गया। पेंटिंग प्रतियोगिता के लिए बच्चों से क्रान्तिकारी शहीदों की तस्वीरें बनवायी गयी। लगभग 30 स्कूलों के 125 बच्चों ने इस मेले में भाग लिया। सभी प्रतियोगियों को प्रोत्साहन के लिए इनाम में उनके स्तर के हिसाब से किताबें दी गई जिनमें शिव वर्मा द्वारा लिखीं शहीद भगतसिंह की यादें, क्रान्तिकारियों के चुनिन्दा दस्तावेज, पहला अध्यापक (उपन्यास) और देव पुरुष हार गए..., लाखी, मिट्टी से मनुष्य तक, कविताएँ और कहानियों की किताबें शामिल की गईं।

पखोवाल इकाई के संयोजक अजेयपाल ने बताया कि यह मेला कोई हँसी-खेल, मौज-मेले के लिए न होकर, एक गम्भीर मकसद के तहत आयोजित किया गया था। बाल मेले का एक मकसद बच्चों की सृजनशीलता को उभरना था। आज यह चर्चा अक्सर ही सुनने को मिल जाती है कि बच्चों के बैगों का भार उनसे भी ज्यादा है। हमारे देश की शिक्षा प्रणाली इतनी नकारा है, जो बच्चों पर सिलेबस का इतना भार लाद दे रही है, कि रसमी (स्कूली) पढ़ाई के अलावा अन्य सृजनात्मक सरगर्मियों के लिए उनके पास समय ही नहीं रहने देती। वैसे भी यह ऐसी पढ़ाई है जो इंसान के रोजमर्रा के जीवन से टूटी हुई है। यह लार्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली की ही लागू करता है, जो सिर्फ लुटेरे निजाम के लिए फायदेमन्द पुर्जे ही तैयार कर सकती है। मानसिक और शारीरिक तौर पर सेहतमन्द नागरिक तैयार करना इस शिक्षा प्रणाली बच्चों के व्यक्तित्व का चौतरफा विकास नहीं होने देती। और यह निर्विवाद ही है कि बच्चे जितना रसमी पढ़ाई से सीखते हैं उतना ही अन्य सृजनात्मक सरगर्मियों के जरिए भी सीखते हैं।

नौभास के पंजाब स्टेट कमेटी के संयोजक राजविन्दर ने मेले में अपने भाषण के दौरान कहा कि नौभास की यह कोशिश बचपन को गन्दी संस्कृति की अँधेरे से बचाने की कोशिश थी। उन्हें अपनी क्रान्तिकारी विरासत से जोड़ने की कोशिश थी। हमें एक नई तरह की दिमागी गुलामी के लिए तैयार किया जा रहा है। संस्कृति के नाम पर हमें अन्धविश्वास दिया जा रहा है, खुलेपन के नाम पर अश्लीलता और नशे की लत। आज के अमानवीय सामाजिक वातावरण में बच्चों को बचाना बहुत जरूरी है। उन्हें ऐसे ज्ञान और संस्कृति से लैस करना होगा, जो एक ऐसी दुनिया की रचना में उनकी मदद करे जो आज की दुनिया से बेहतर हो। आज शहीद भगतसिंह को याद करने का एक ही अर्थ है—इस समाज को बदलना, क्रान्तिकारियों के सपनों का समाज बनाना।

इसी मकसद को पूरा करने की कोशिशों में से एक छोटी-सी कोशिश थी यह मेला। मेले की तैयारी के लिए बड़ी संख्या में एक पर्चा छपवाकर बाँटा गया। नौभास की टीमों द्वारा अलग-अलग स्कूलों में जाकर इस मेले के बारे में बताया गया। अपने सम्बोधन में नौभास के सदस्य बच्चों को क्रान्तिकारियों के जीवन के बारे में बताते थे। उन्हें मेले में आयोजित किए गए प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए उत्साहित किया गया। तैयारी के लिए बच्चों को साहित्य भी उपलब्ध करवाया गया। इस प्रचार के दौरान आठ स्कूलों के बच्चों को आमंत्रित किया गया। मेले के लिए धन आम जनता में ही जुटाया गया।

मेले में मुख्य अतिथि के तौर पर पंजाबी के सुप्रसिद्ध कवि जसवन्त ज़फ़र शामिल हुए। उन्होंने अपने भाषण के दौरान कहा कि बच्चों को अपनी क्रान्तिकारी विरासत से परिचित करवाने के लिए नौभास का यह कदम सराहनीय है। जनचेतना की ओर से पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया।

त्रिलोचन हमारे बीच नहीं रहे। विगत 9 दिसम्बर को लम्बी बीमारी के बाद उनका निधन हो गया। वे 90 वर्ष के थे। त्रिलोचन भारतीय आत्मा और परम्परा के सकारात्मक पक्ष के कवि थे। वे पूँजीवादी समाज के सर्वव्यापी अलगाव का निषेध करते, जीवन से अगाध लगाव के, सतत यात्रा और संघर्ष के प्रति हठी प्रचण्ड आग्रह के और उज्ज्वल आशाओं के कवि थे।

जिन्दगी की कठिन लड़ाई लड़ते हुए सतत रचनाशील त्रिलोचन लम्बे समय तक साहित्य-संसार के महारथियों द्वारा उपेक्षित रहे। पर उनकी कविताओं की शक्ति को देखकर और आठवें दशक के युवा वामपंथी कवियों में फिर से उनका बढ़ता मान देखकर मठाधीशों ने भी उन्हें मान्यता दी और अपनाने की चेष्टाएँ कीं। इस अवधि में विभिन्न स्थापित पीठों पर आचार्य पद पर बैठे होकर भी त्रिलोचन संघर्षमय अतीत से अर्जित जनसंग ऊष्मा से अर्जस्वित होकर जनपक्ष कविताएँ लिखते रहे। आज भी हम त्रिलोचन को मुख्यतः 'धरती' के कवि के रूप में याद करते हैं और उनका अभिनन्दन करते हैं।

बिगुल परिवार की ओर से हम उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि देते हैं और त्रिलोचन को याद करते हुए हम उनके प्रथम संकलन 'धरती' (1945) की कुछ कविताएँ बिगुल पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

– सम्पादक

त्रिलोचन की कविताएँ

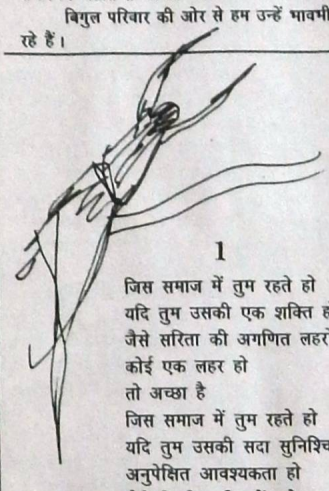

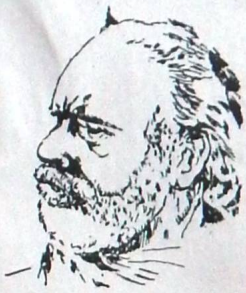

1

जिस समाज में तुम रहते हो
यदि तुम उसकी एक शक्ति हो
जैसे सरिता की अगणित लहरों में
कोई एक लहर हो
तो अच्छा है
जिस समाज में तुम रहते हो
यदि तुम उसकी सदा सुनिश्चित
अनुपेक्षित आवश्यकता हो
जैसे किसी मशीन में लगे बहु कल-पुर्जों में
कोई भी कल-पुर्जा हो
तो अच्छा है
जिस समाज में तुम रहते हो
यदि उसकी करुणा ही करुणा
तुम को यह जीवन देती है
जैसे दुर्निवार निर्धनता
बिल्कुल टूटा-फूटा बर्तन घर किसान के रक्खे रहती
तो यह जीवन की भाषा में
तिरस्कार से पूर्ण मरण है
जिस समाज में तुम रहते हो
यदि तुम उसकी एक शक्ति हो
        उसकी ललकारों में से ललकार एक हो
        उसकी अमित भुजाओं में दो भुजा तुम्हारी
        चरणों में दो चरण तुम्हारे
        आँखों में दो आँख तुम्हारी
तो निश्चय समाज-जीवन के तुम प्रतीक हो
निश्चय हो जीवन, चिर जीवन

2

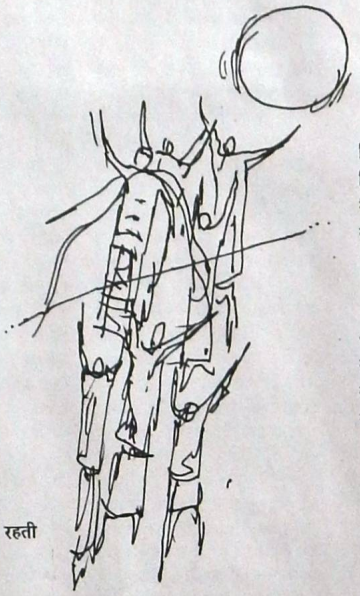

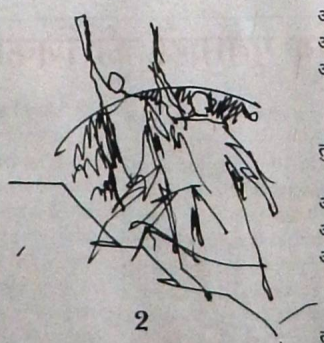

पथ पर
चलते रहो निरन्तर
        सूनापन हो
        या निर्जन हो
        पथ पुकारता है
        गत स्वप्न हो
पथिक
चरण-ध्वनि से
दो उत्तर
        पथ पर
        चलते रहो निरन्तर

3

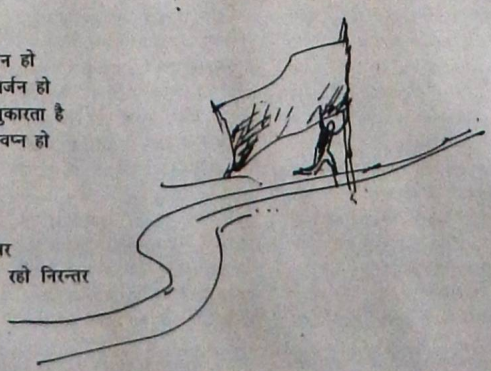

अभी तुम्हारी शक्ति शेष है
अभी तुम्हारी साँस शेष है
अभी तुम्हारा कार्य शेष है
    मत अलसायो
    मत चुप बैठो
तुम्हें पुकार रहा है कोई

•

अभी रक्त रग-रग में चलता
अभी ज्ञान का परिचय मिलता
अभी न मरण-प्रिया निर्बलता
    मत अलसाओ
    मत चुप बैठो
तुम्हें पुकार रहा है कोई

4

जिस समाज का तू सपना है
जिस समाज का तू अपना है
मैं भी उस समाज का जन हूँ
उस समाज के साथ-साथ ही–
        मुझको भी उत्साह मिला है

•

ओ तू नियति बदलने वाला
तू स्वभाव का गढ़ने वाला
तूने जिन नियमों से देखा
उन मज़दूर-किसानों का दल–
        शक्ति दिखाने आज चला है

•

साम्राज्य औ' पूँजीवादी
लिए हुए अपनी बरबादी
जोर-आजमाई करते हैं
आज तोड़ने को उनका मन
        उठकर दलित समाज चला है

तेरी गति में जीवन गतिमय
तेरी मति में मन संगतिमय
तेरी जागरूकता द्युतिमय
तेरी रक्षा की चिन्ता में
        जन-जीवन का सुफल फला है

5

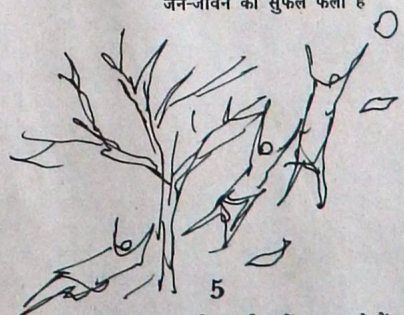

पत्ते केवल पतझर आने पर ही नहीं झरा करते हैं,
जीवन का रस जभी सूख जाता है तभी बिना कुछ झिझ
बिना मुहूर्त-प्रतीक्षा के ही झर जाते हैं।

•

इस जीवन का मोल बहुत है। मोल कूतना सहज नहीं है।
फिर भी इस जीवन का दुनिया में अपमान हुआ करता है
इतना जिसका पार नहीं है।

•

कुछ वर्षों के क्षणभंगुर जीवन को सुखी बनाने के ही
लिए लोग औरों के सुख को बल से हरण किया करते हैं,
जीवन अमर अगर होता तो पता नहीं फिर क्या क्या होता,
क्या क्या गुल खिलते दुनिया में।

•

ऐसा नहीं दिखाई देता कहीं कि लोग प्रसन्न चित्त से
एक-दूसरे के दुख को अपना ही जाने, अपना मानें
और दुःख को कम करने के लिए समाज समान बनायें
धरती पर ही स्वर्ग बसायें।

फ्रांस में फिर भड़की जनाक्रोश की आग लपटें बुझ गयीं पर चिंगारी ज़िन्दा है

नवम्बर के दूसरे पखवारे में फ्रांसीसी जनता के अलग-अलग हिस्सों ने सड़कों पर उतरकर जनाक्रोश का जो प्रदर्शन किया उसने 'लोहपुरुष' कहे जाने वाले फ्रांसीसी राष्ट्रपति निकोलस सरकोज़ी को यह चेता दिया है कि उन्हें अपने तथाकथित सुधारों को लागू करने के लिए लोहे के चने चबाने पड़ेंगे। पखवारे के शुरू में उच्च शिक्षा में निजी पूंजी की दखल के खिलाफ़ शुरू हुआ छात्रों का देशव्यापी आन्दोलन और नई पेंशन नीति के खिलाफ़ सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों की हड़ताल अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि पेरिस के उपनगर एक बार फिर अक्टूबर 2005 की तरह जल उठे। जनाक्रोश की ये लपटें तो फिलहाल शान्त हो चुकी हैं लेकिन फ्रांसीसी शासक वर्ग को जनता का यह सन्देश मिल गया है कि उनके मंसूबों की राहें आसान नहीं हैं क्योंकि चिंगारी अभी बुझी नहीं है। वह अन्दर ही अन्दर सुलग रही है।

फ्रांसीसी शासक वर्गों के मंसूबों को चुनौती देने की पहलकदमी सबसे पहले छात्रों ने की। सरकार ने इस आशय का फरमान जारी किया था कि विश्वविद्यालयों-कॉलेजों के अधिकारी चाहें तो संसाधन जुटाने के लिए निजी कम्पनियों से मदद ले सकते हैं। उच्च शिक्षा में निजी पूंजीपतियों की इस दखल के खिलाफ़ छात्र भड़क उठे। देश के कुल 85 विश्वविद्यालयों में से 40 विश्वविद्यालयों के छात्रों ने विरोध में कक्षाओं का बहिष्कार शुरू कर दिया और सड़कों पर उतर आये। इसके दो दिन बाद ही रेल यूनियनों ने भी नई पेंशन नीतियों के खिलाफ़ देश व्यापी हड़ताल शुरू कर दी जिसमें आगे चलकर समूचे सार्वजनिक क्षेत्र–डाक विभाग, विद्युत विभाग, प्रशासनिक सेवाओं, गैस सेवाओं, परिवहन, राजस्व विभाग के साथ ही शिक्षक भी शामिल हो गये।

रेलकर्मियों के आक्रोश का कारण यह था कि अब तक चली आ रही पेंशन नीति को, जिसमें उन्हें विशेष सुविधाएँ हासिल थीं, को बदलने की घोषणा सरकार ने कर दी थी। पुरानी पेंशन नीति में रेलवे के ड्राइवरों और कुछ अन्य श्रेणियों के कार्यों–जैसे समुद्री मछुआरों, खनन कर्मियों, सरकारी थियेटरों में काम करने वाले अभिनेताओं, फ्रांसीसी सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारियों, सिविल सेवा के अधिकारियों आदि कुल 15 श्रेणियों के कठिन समझे जाने वाले कार्यों में लगे लोगों को 50 वर्ष की उम्र में ही रिटायरमेण्ट सुविधा हासिल थी और वे पूर्ण पेंशन के हक़दार थे। सरकार ने इसे बदलकर सभी कर्मचारियों के लिए एक पेंशन नीति की घोषणा की थी। नयी नीति में यह भी प्रावधान किया गया है कि सरकारी कर्मचारियों का न्यूनतम सेवाबास 37 वर्ष से बढ़ाकर 42 साल कर दिया जाये जिससे पेंशन फण्ड में योगदान बढ़ सके। इससे सभी सरकारी कर्मचारी इसके दायरे में आ गये और वे आक्रोशित हो उठे।

सरकारी कर्मचारियों में सरकार के इस मंसूबे के खिलाफ़ भी आक्रोश था कि वर्ष 2008 तक 23,000 नौकरियों में कमी कर दी जायेगी। मुद्रास्फीति के चलते वास्तविक आय में लगातार हो रही गिरावट से भी वे आक्रोशित थे। उनके अनुसार वर्ष 2000 से अब तक उनकी वास्तविक आय में छह प्रतिशत तक गिरावट हो चुकी है। दिलचस्प बात यह है कि राजकोष की कमी का रोना रोते हुए दुनियाभर की पूँजीवादी सरकारों की तरह वित्तीय अनुशासन की दुहाई देने वाली सरकोज़ी सरकार भी अपने सांसदों के विशेषाधिकारों और सुविधाओं में कटौती करने के बारे में बिल्कुल भी नहीं सोच रही है।

शुरू में रेलकर्मियों की हड़ताल के प्रति राष्ट्रपति सरकोज़ी ने अपने चिरपरिचित अन्दाज़ में सख्ती का रुख अपनाते हुए कहा कि जब तक हड़ताल खत्म नहीं होगी तबतक सरकार कोई बात नहीं करेगी। सरकोज़ी के इस बयान का उल्टा असर पड़ा। हड़ताल न केवल व्यापक होती गयी बल्कि और अधिक उग्र हो उठी। युवा रेलकर्मियों ने पेरिस रेलवे स्टेशन पर ट्रेनों की आवाजाही ठप्प करने के लिए तरह-तरह के औज़ार और कूड़ों-कचरों को फेंक दिया। कई जगहों पर रेल लाइनों पर भी तोड़फोड़ की गयी। आगे चलकर रेल कर्मियों की इस हड़ताल में अन्य सरकारी विभागों के कर्मचारियों और शिक्षकों के शामिल हो जाने के बाद सरकोज़ी ने अपना रुख नरम करके बातचीत की पेशकश की।

लेकिन हड़ताली कर्मचारियों से वार्ता के दौरान सरकार अपने रुख पर कायम रही। राष्ट्रपति ने अपने अन्दाज़ में चेतावनी भी दे डाली कि "वे न तो समर्पण करेंगे और न ही झुकेंगे।" फ्रांस के मेयरों की एक मीटिंग में सरकोज़ी ने कहा, "किसी को कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। जिस काम को करने की जरूरत है उसे किया जायेगा। फ्रांसीसी जनता ने मुझे इसे करने के लिए चुना है और मैं उनके साथ विश्वासघात नहीं करूँगा।" सरकार का रुख साफ था, लेकिन आम कर्मचारी झुकने के लिए नहीं तैयार थे। वार्ता के अगले दौर में सरकार ने केवल यह आश्वासन दिया कि अगर हड़ताल वापस हो जाये तो वह तनख्वाहें बढ़ाने और कुछ रियायतें देने के लिए तैयार हो सकती है। इसी आश्वासन पर कर्मचारी यूनियनों के नेतृत्व ने हड़ताल वापस ले ली। यह सीधे-सीधे विश्वासघात था क्योंकि आम कर्मचारी अभी लड़ने के मूड में थे।

रेलकर्मियों ने जगह-जगह मीटिंगें कर नेतृत्व के विश्वासघात के खिलाफ़ अपना आक्रोश भी जाहिर किया। एक रेलकर्मी ने अपनी भावना इन शब्दों में प्रकट की, "हम हार गये हैं। यह सीधे-सीधे हथियार डाल देना है। नेतृत्व ने हमें मुफ्त में बेच दिया है और हमारा सिर झुका दिया है।" इसी तरह छात्रों की हड़ताल भी थोथे आश्वासनों के बाद वापस ले ली गयी। इससे आम छात्रों में भी गहरा असन्तोष व्याप्त है।

छात्रों और सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल खत्म होने से हुक्मरान अभी ठीक से राहत की साँस भी नहीं ले पाये थे कि 26 नवम्बर को पेरिस के उत्तरी उपनगर विलियर्स-ले-बेल में एक बार फिर अक्टूबर 2005 जैसी ज्वाला भड़क उठी। आप्रवासी नौजवानों का आक्रोश इस बार 15-16 वर्ष के दो आप्रवासी किशोरों की एक पुलिस गश्ती कार से टकराकर हुई मौत के बाद फूट पड़ा। इस घटना की खबर जंगल में आग की तरह फैल गयी कि पुलिस वालों ने या तो जानबूझकर दो किशोरों को कार से कुचल दिया है या फिर दुर्घटना के बाद उन्हें वहीं छोड़कर चले गये जिससे समय पर इलाज न हो पाने के कारण उनकी मौत हो गयी। घटना की खबर पहुँचते ही नौजवानों की भीड़ ने जबर्दस्त तोड़फोड़ और आगजनी शुरू कर दी। अनगिनत कारों, दुकानों और सार्वजनिक इमारतों को आग के हवाले कर दिया गया और पुलिस वालों पर पत्थरों और पेट्रोल बमों से जबर्दस्त हमला बोल दिया गया। इस हमले में 80 पुलिस वाले घायल हुए जिसमें कम से कम पाँच गम्भीर रूप से घायल हुए।

आप्रवासी अश्वेत और फ्रांस के पुराने अफ्रीकी उपनिवेशों से आकर बसे नागरिकों में शिक्षा, नौकरियों और आवासीय सुविधाओं में भेदभाव और श्वेत पुलिसकर्मियों द्वारा रोज-रोज अपमानित किये जाने से अन्दर ही अन्दर जो आक्रोश व्याप्त था वह दो किशोरों की मौत से फूट पड़ा। अक्टूबर 2005 में भी इसी तरह पुलिस के कारण दो किशोरों की मौत के बाद आक्रोश भड़क उठा था। उस समय लगभग एक पखवारे तक चली आगजनी और तोड़फोड़ ने पेरिस के हुक्मरानों और कुलीन आबादी को दहलाकर रख दिया था। इस बार की हिंसा की व्यापकता भले ही कम थी लेकिन उसकी उग्रता और योजनाबद्धता ने सत्ताधारियों के होश उड़ा दिये।

इस बार हिंसक घटनाओं पर तीन-चार दिनों में ही काबू पा लिया गया लेकिन उसकी प्रचण्डता का अनुमान पुलिस अधिकारियों के इन बयानों से लगाया जा सकता है। सिनर्जी पुलिस यूनियन के एक अधिकारी ने कहा कि इस बार "दंगाइयों ने सुरक्षा बलों के खिलाफ़ शहरी छापामारों की कार्यनीति पर अमल किया।" एक अन्य पुलिस अधिकारी ने कहा, "दो बातें चिन्ता का विषय हैं : हिंसा व्यापक रूप ले रही है, और पुलिस के खिलाफ़ योजनाबद्ध ढंग से आग्नेयास्त्रों का उपयोग हो रहा है।" एक अन्य अधिकारी ने कहा, "पुलिस के खिलाफ़ आग्नेयास्त्रों के उपयोग से हम एक बहुत बड़े खतरे के करीब पहुँचते जा रहे हैं।"

सड़कों पर नजारा यह था कि 300 से अधिक नौजवान अपने आगे खाली और बेकार पड़े बड़े-बड़े ड्रमों का सुरक्षा कवच खड़ा करके पत्थरों, पेट्रोल व एसिड बमों से हमले कर रहे थे और पुलिस रक्षात्मक होकर उनके ऊपर रबर की गोलियाँ और आँसू गैस के गोले छोड़ रही थी। हालात कितने विस्फोटक थे और हुक्मरान कितने घबराये हुए थे, इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि राष्ट्रपति निकोलस सरकोज़ी ने उस दौरान अपनी चीन यात्रा से लौटने के तत्काल बाद मंत्रिमण्डल की एक आपात बैठक बुलायी और हालात का जायजा लिया।

फ्रांस की ये ताजा घटनाएँ एक ओर जहाँ फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था के संकटों को जाहिर कर रही है वहीं दूसरी ओर फ्रांसीसी अवाम के भीतर मौजूदा असन्तोष को भी प्रकट कर रही है। कहा जा सकता है कि जनाक्रोश की लपटें तो फिलहाल थम गयी हैं लेकिन चिंगारी अभी बुझी नहीं है। वह अन्दर ही अन्दर सुलग रही है।

निचली अदालतें ही नहीं समूची न्यायपालिका वर्गीय पूर्वाग्रहों की शिकार है

बिगुल संवाददाता

दिल्ली। पिछले दिनों दिल्ली उच्च न्यायालय की दो सदस्यीय खण्डपीठ ने एक याचिका की सुनवाई के दौरान टिप्पणी की कि निचली अदालतें वर्गीय पूर्वाग्रहों की शिकार हैं और वे मानवाधिकारों का उल्लंघन भी करती हैं। न्यायमूर्ति आर.एस.सोढी और न्यायमूर्ति एच.आर. मल्होत्रा ने काफी बेलागलपेट ढंग से कहा कि निचली अदालतें समाज के निचले संस्तरों के लोगों को जेल भेज देती हैं और अमीर एवं मशहूर लोगों को जमानत दे देती हैं।

विद्वान न्यायमूर्तिद्वय ने ये टिप्पणियाँ जून के आखिरी हफ्ते में जेल में छह कैदियों की मृत्यु की ओर ध्यान आकर्षित करने वाली एक याचिका की सुनवाई के दौरान कीं। उन्होंने इस सच्चाई की तस्दीक की कि तिहाड़ सेण्ट्रल जेल में छोटे-मोटे अपराधों में लम्बे समय से पड़े हुए कैदियों में ज्यादातर गरीब लोग हैं। उन्होंने कहा, "हमें एक भी मामला ऐसा दिखाइये जहाँ कोई करदाता छोटे-मोटे मामलों में जेल में पड़ा हुआ हो। उनमें ज्यादातर गरीब लोग हैं और जेल में बन्द कर हम उन्हें चोट पहुँचा रहे हैं।"

खण्डपीठ ने यह भी कहा, "निचली अदालतें ऐसे छोटे-मोटे मामलों पर सुनवाई के दौरान असंवेदनशीलता का परिचय देती हैं जिनमें गरीब लोग शामिल रहते हैं।" खण्डपीठ ने सवाल किया कि "क्या लोगों का जीवन अर्थहीन है? क्या बिना पर्याप्त कारणों के जेलों में बन्द कैदियों के कोई मानवाधिकार नहीं हैं?"

विद्वान न्यायमूर्तिगण के इन विचारों से भला कोई असहमत कैसे हो सकता है? उन्होंने जिन सच्चाइयों पर रोशनी डाली है उसे जनतान्त्रिक एवं नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक हर व्यक्ति जानता है। लेकिन यह अर्धसत्य है। पूरी सच्चाई यह है कि निचली अदालतें ही नहीं ऊपरी अदालतें भी इन वर्गीय पूर्वाग्रहों से बरी नहीं हैं। हो भी नहीं सकतीं। वर्गों में बँटे समाज में कोई भी संस्था चाहे वह राजनीतिक-सामाजिक हो या कानूनी-संवैधानिक, वर्गीय पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो सकती।

क्या हम ऊपरी अदालतों के ऐसे फैसलों से वाकिफ नहीं हैं जहाँ धनिकों को और राजनीतिक रसूख वाले लोगों को संगीन अपराधों में भी जमानतें मिल जाती हैं। सबूतों और गवाहों की बुनियादी पर खड़ी न्यायिक प्रक्रिया ही ऐसी है कि ज्यादातर संगीन जुर्म में शामिल धनवानों और शासन-सत्ता में ऊँची पहुँच रखने वाले लोगों पर दोष सिद्ध ही नहीं हो पाता और वे बाइज्जत बरी कर दिये जाते हैं। ऐसे अनगिनत मामले आम लोगों की जानकारी में हैं, उनकी सूची गिनाने की आवश्यकता नहीं। विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की होड़ के चलते अगर कई बड़े नेताओं के खिलाफ़ भ्रष्टाचार के आरोप लगे भी, कुछ दिन तक कानूनी प्रक्रियाएँ चलीं भी तो हाईकोर्ट तक आते-आते सब बाइज्जत बरी हो जाते हैं। यहाँ तक कि हत्या और बलात्कार जैसे घृणित अपराधों में भी पूँजीपति-नेता-अफसर और तमाम सेलिब्रिटीज बाइज्जत बरी हो जाते हैं।

देश में शासक वर्ग के प्रति न्यायपालिका की वर्गीय पक्षधरता पिछले डेढ़ दशकों में और अधिक खुलकर जनता के सामने आयी है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में पूँजीपति वर्ग के पक्ष में नीतियों को लागू कराने में अनेक मौकों में न्यायपालिका ने वह काम किया जिसे करने में जनदबाव के चलते सरकारें ठिठक रही थीं। इस सन्दर्भ में पर्यावरण सुरक्षा के नाम पर बिना मज़दूरों की रोजगार सुरक्षा की गारण्टी दिये दिल्ली के तमाम लघु उद्योगों को बन्द करने सम्बन्धी आदेश का उल्लेख पर्याप्त है। पिछले डेढ़ दशक के दौरान श्रमिकों और नियोक्ताओं के बीच के अधिकांश विवादों में सुप्रीम कोर्ट ने श्रमिक विरोधी फैसलों की झड़ी लगा दी है।

किसी देश की न्यायपालिका उस देश की आर्थिक-राजनीतिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित चौहद्दियों का अतिक्रमण कर ही नहीं सकती। पिछले दिनों तथाकथित न्यायिक सक्रियता के नाम पर सुप्रीम कोर्ट संसद और विधानसभाओं के कामों पर जो टिप्पणियाँ कर रहा था उस पर काफी हो-हल्ला मचने के बाद अब सुप्रीम कोर्ट ने बैकफुट पर जाकर यह व्यवस्था दी है कि उसे इन संस्थाओं के काम में बेजा दखल नहीं देना चाहिए। इसका असर यह हुआ है कि अब सुप्रीम कोर्ट के जज जनहित याचिकाओं पर सुनवाई करने से यह कहकर कतराने लगे हैं और हर मामले को सर्वोच्च सम्पूर्ण पीठ के हवाले कर रहे हैं कि उन्हें यह स्पष्ट नहीं है कि यह मामला उनके अधिकार क्षेत्र में आता है या नहीं।

बुर्जुआ न्यायशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों में ही निजी सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता मिली हुई है जिसे ईश्वरीय मान्यता जैसा दर्जा हासिल है। ऐसे में सम्पत्तिशाली वर्गों द्वारा आम गरीबों के अधिकारों के हरण के खिलाफ़ बुर्जुआ न्यायपालिकाएँ भला कैसे संवेदनशील हो सकती हैं। इसलिए दुनिया भर की बुर्जुआ न्यायपालिकाएँ अगर 'समरथ को नहिं दोस गुसाईं' के सिद्धान्त पर अमल करती हैं तो आश्चर्य कैसा?

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : डा. दूधनाथ, सुखविन्दर • सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ